HINDI´ VERSION

OF

THE HITOPADES´A:

BOOK I.;

RETAINING AS MANY AS POSSIBLE OF THE ORIGINAL SANSKRIT EXPRESSIONS.

PRINTED FOR THE USE OF SANSKRIT CLASSES IN THE SCHOOLS AND COLLEGES OF INDIA,

By Order of Govt. N. W. P.

MIRZAPORE:

ORPHAN SCHOOL PRESS: R. C. MATHER, SUPERINTENDENT.

1851.

ADVERTISEMENT.

THE special design of this Hindí version of a part of the Sanskrit *Hitopades'a* will be learnt from the following extract from the General Report on Public Instruction in the North West Provinces for 1847-8.

" The plan of the translation is this, that every word (noun, adjective, or participle) which it is allowable to transfer into the Hindí, shall be so transferred, instead of a more common synonym's being substituted for it. The book which should thus bear to the colloquial style the relation that the *Bágh o Bahár* or the *Iḳhwánussafá* bears to the more familiar Urdú, will be read in the Hindí class, and the meaning of all the words will be learned as usual from the mouth of the pandit. The pupil, who may at the same time be making himself acquainted with the broader outlines of Sanskrit grammar (by means of aids which I contemplate supplying with a special view to this introductory course) will then take up the Sanskrit original with the advantage of a previous acquaintance with nearly every word in it;—so that his undistracted attention may be bestowed upon the inflection which constitute almost the only difference between the original and the version with which he shall have been rendered familiar."

If the version is found to answer this purpose, a considerable width of difference between its style and the more familiar style of Hindí works will constitute no considerable ground of objection to it. A smoother style might have been not incompatible with the end in view; but, as a first attempt, in a somewhat novel line, its execution may be thought not un-creditable to Pandit Badarí Lála, to whom the task of preparing the version was mainly confided.

J. R. B.

Benares College,
24th April, 1851.

॥ श्रीः ॥

श्रीयुत कृपावान् धीमान् परमसुजान सकल गुणनिधान परम-उजागर दयासागर अति नागर वाराणसी पाठशालास्थ श्रीयुत डाक्तर बेलण्टाइन प्रधानाऽध्यक्ष की आज्ञाऽनुसार तच्छालास्थ भाषा पाठक पण्डित बद्रीलाल सहस्र अवदीच अर्गलपुर बासी नें संस्कृत शब्दाऽनुयायी भाषा में संस्कृत पठनाऽभिलाषी विद्यार्थियें के निमित्त संस्कृत हितोपदेश का अनुवाद किया ॥

इस रीति की भाषा लिखवानें से हमारे प्रधानाऽधिपति का यह आशय है जो भाषा में अधिक संस्कृत शब्दों का प्रचार होनें से विद्यार्थियें को देववाणी के जाननें में विशेष परिश्रम न होगा अर्थात् संस्कृत शब्द मिश्रित भाषा के पढ़नें से सहज में अनेक शब्दों का ज्ञान होजायगा ॥ और जितना श्रम शब्दार्थ ज्ञान में अब होता है उतना फिर न होगा और भाषा भी सब की उत्तम होगी और शीघ्र ही देव वाणी की दृद्धि होगी सत्य है जिस वार्त्ता का अधिक व्यवहार होता है तौ उस के जाननें में किसी को विशेष श्रम नहीं करना पड़ता है ॥ सं. १८४८ ई० १९०५ हिं ॥

* । श्री परमेश्वरो विजयते । *

॥ हितोपदेश का अनुवाद ॥

* । प्रस्तार । *

* ॥ जो यह हितोपदेश श्रुत होय तो संस्कृतोक्ति में पाटव सर्व्वत्र वाक्योंका वैचित्र्य और नीति विद्या प्राप्त होवे ॥ प्राज्ञ को चाहिए कि अपने को अजर और अमर समझ कर विद्या और अर्थ का चिंतन करे और जैसे किसी का केश मृत्यु से गृहीत है वैसा अपने को जान कर धर्म्म का आचरण करे। सर्व द्रव्य में विद्याही को सर्वदा अहार्य्यत्व, अनर्घत्व, और अक्षयत्व के हेतु से अनुत्तम द्रव्य कहा है। विद्या ही नीच मनुष्य और दुर्धर्ष नृप का सरित् समुद्र सम संगम करादेती है अतः पर भाग्योदय जानिये। विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता प्राप्त होती है, पात्रता से धन, धन से धर्म्म, उससे सुख प्राप्त होता है। प्रतिपत्ति हेतु दो विद्या हैं। एक शस्त्र द्वितीय शास्त्र विद्या, आद्या वृद्धत्व में हास्य का हेतु होती है औ द्वितीया सदा आदृत होती है। जो नवीन भाजन लग्न है उसका संस्कार अन्यथा

नहीं इस निमित्त कथा के छल से बालकों के अर्थ नीति का कथन कर्त्ता हूं। मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह, और सन्धि इन् कथाओं को पंचतन्त्र तथा अन्य ग्रंथों से आकर्षण कर लिखता हूं ॥

भागीरथी के तीर पर पाटलि पुत्र नाम नगर है वहां सर्वस्वामि गुणोपेत सुदर्शन नाम नरपति रहता था, उस भूपति नें एक समय में पठ्यमान श्लोक द्वय श्रवण किया उन् का आशय यह है ।

अनेक संशयों का छेदक, और परोक्षार्थ दर्शक शास्त्र सब का लोचन है जिस् को यह नहीं वही अंध है । यौवन, धन, सम्पत्ति, प्रभुत्व, अविवेकता, ये प्रत्येक अनर्थ के हेतु हैं और जहां यह चतुष्टय होंय तहां क्या जानिए क्या होय । यह आकर्ण कर, आत्मपुत्रों को अनधिगत शास्त्र, और नित्य कुमार्गगामी जान शास्त्राऽनुष्ठान से उद्विग्न मन हो वह राजा चिन्तन करनें लगा ।

उस् जात पुत्र से क्या अर्थ जो विद्यावान् और धार्मिक नहीं ॥
कांणे चक्षु से क्या लाभ किंतु वह केवल पीड़ा जनक है ॥
अजात, मृत, मूर्ख पुत्रों में आद्य दो वर हैं। और अंतिम नहीं ।
आद्य सकृत् दुःख कारक हैं पर अन्तिम पद २ में दुःख
जनक है ॥

वही जात है जिस् के जात होंने से वंश समुन्नति को प्राप्त होवे यों तो परिवर्त्ती संसार में मृत होकर कौन नहीं जात होता ॥

गुणि गण की गणना के आरंभ में जिस् के नामोच्चारण में स-

संभ्रम भी कठिनी न पतन करे तिस से जो अंबा सुतिनी (अर्थात पुत्रवती) कहावे तो कहो वंध्या कीदृशी होती है। जिस् का यश दान तप शौर्य्य विद्या और अर्थलाभ में प्रथित नहीं भया वुह माता का उच्चार (अर्थात्) मल है। एक गुणी पुत्र वर है शत मूर्ख श्रेष्ठ नहीं यथा एक चंद्र तम का हनन कर्त्ता है तारागण नहीं। जिसूनें पुण्यतीर्थों में सुदुष्कर तप किया है तिस् का पुत्र वश्य सम्पन्न धार्मिक और सुधी होता है॥ तथाच उक्तम्। अर्थागम, नित्य अरोगिता, प्रिया भार्य्या, पुनः प्रिय वादिनी, वश्यपुत्र, अर्थकरी विद्या, ये छ वस्तु लोक में सुखावह हैं। कुशूल पूरणाढक सम बहु पुत्रों से कौन धन्य है कुलालम्बी एक वर है जिस् से पिता विश्रुति को प्राप्त होय। ऋण कर्त्ता पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती भार्या। और अपण्डित पुत्र, इन् सब को शत्रु जानिये। अनभ्यसित विद्या, अजीर्ण भोजन, दरिद्रो की सभा, और वृद्ध को तरुणी, विष समान हैं। सब स्थान ये प्रसूत गुणवान् नर पूजनीय है जैसे विशुद्ध वंशधनु निर्गुण होने से कुछ काम का नहीं होता। तिस् से किसी रीति से अपने पुत्रों को गुणवन्त करूं। आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ये पशु और नर में समान हैं इस् में विशेष करके धर्म्म ही अधिक है तो धर्म्महीन नर भी पशु समान हैं॥ धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जिस् के इन् में से एक भी विद्यमान नहीं तिस्

का जन्म अजागलस्तन इव निरर्थक है। यथोच्यते। आयु, कर्म्म, वित्त, विद्या, और निधनता, ये पांच देही को गर्भ से ही सृज्यमान होते हैं। अवश्य भावी भाव महत्पुरुषों को भी होता है यथा नील-कण्ठ को नग्नत्व और हरिको महाऽहिशयन। जो अभावी सो भावी नहीं और जो भावी सो अभावी नहीं यह चिन्ता विषघ्न अ-गद क्यों न पीवे। ये कार्य्योऽद्यम किसी नरके आलस्य वचन हैं। यथा एक चक्र से रथ की गति नहीं तैसे पुरुषकार बिन दैव को सिद्धि नहीं। पूर्व जन्मकृत कर्म्म दैव है तस्मात् पुरुषकार करके अतन्द्रित होय यत्न करना अवश्य है। अन्यच्च। उद्योगी पुरुष-सिंह को लक्ष्मी उपेत होती है दैव से देय है ऐसा कापुरुष कहते हैं। दैव को निहत्य आत्म शक्त्यनुसार पुरुषार्थ कर जो यत्न किये सिद्धि नहोय तो कुछ दोष नहीं है॥ जैसे मृत्पिण्ड से कर्त्ता जो इच्छा करता है सो बनाता है। ऐसे मानव भी आ-त्मकृत कर्म्म का प्रतिपादन कर्त्ता है॥ उद्यम से कार्य्य की सिद्धि है मनोरथ से नहीं यथा सुप्त सिंह के मुख में मृग स्वयं नहीं प्रवेश करते हैं॥

वुह माता शत्रु और पिता बैरी जिस ने बालक को न पढ़ा-या। और वह सभा में शोभा नहीं पाता जैसे हंसों में बक॥ रूप यौवन सम्पन्न और विशाल कुल संभव भी होंय पर विद्या-हीन निर्गंध पलाशपुष्पवत् शोभा नहीं पाते। जिस ने कभी पु-

सक में न पढ़ा और न गुरु के निकट ती वह स्त्री के जारज गर्भ सम सभा में शोभता नहीं। यह चिन्तन कर राजा नें पंडितों की सभा की, और कहा । भो पण्डितो मेरे वचन श्रवण करो। कोई ऐसा विद्वान् है जो नित्य न्मार्गगामी और अनधिगतशास्त्र मेरे पुत्रों का इसकाल नीति शास्त्र के उपदेश से नवीन जन्म करनें में समर्थ होय ? काच कांचन के संसर्ग से मारकती द्युतिको धारण करता है तैसे सत् सन्निधान से मूर्ख प्रवीणता को प्राप्त होता है । हे तात हीन समागम से मति हीनता को सम के साथ समता को औ विशिष्ट के संग से विशिष्टता को प्राप्त होती है ॥

उस् काल सकल नीतिशास्त्रज्ञ विष्णुशर्म्मा नामा पण्डित वृहस्पति के सदृश बोला । हे देव महाकुल संभूत इन् राजपुत्रों को नीति सिखा के निमित्त मैं समर्थ हूं । यतः ॥ अद्रव्य निहित कोई क्रिया फलवती नहीं होती जैसे शत व्यापार से भी शुकवत् बक नहीं पढ़ता । इस् गोत्र में तो निर्गुण अपत्य नहीं होते जैसे पद्मराग की आकर में काचमणि का जन्म कहां । अतः मैं षण्मासाऽऽभ्यन्तर में तुमारे पुत्रों को नीति शास्त्राऽभिज्ञ करूंगा । राजा नें पुनः सविनय कहा ।

कीट भी सुमन प्रसंग से सत्पुरुषों के शिर पर आरोहण कर्त्ता है जैसे महान् पुरुषों से सुप्रतिष्ठित अश्म देवत्व को प्राप्त होता

है। अन्य। यथा उदयगिरि में सूर्य्य की सन्निकर्षता से संपूर्ण द्रव्य दीप्यमान होते हैं तैसे सत् सन्निधान से हीनवर्ण भी दीप्यमान होता है ॥

तिस् से मेरे पुत्रों के नीति शास्त्र के उपदेशार्थ आपही योग्य हैं ऐसा कहकर विष्णुशर्म्मा को बहुमान पूर्वक निज पुत्रों को समर्पित किया। पश्चात् प्रासाद पृष्ठस्थ और सुखोपविष्ट राजपुत्रों के आगें प्रस्ताव क्रम से वह पण्डित बोला। हे महाराज।

काव्य शास्त्र विनोद से धीमानों का काल व्यतीत होता है और मूर्ख व्यसन निद्रा कलह में खोता है।

इस् से आप के विनोदार्थ काक कूर्म्मादिक की विचित्र कथा वर्णन करता हूं। राज पुत्रों नें कहा कहो। विष्णुशर्म्मा बोला आप श्रवण कीजिए। संप्रति मित्रलाभ कथा को कहता हूं जिस् का आद्य श्लोकाशय यह है ॥ इति० ॥

॥ अथ कथा का आरम्भ ॥

। हितोपदेश का अनुवाद ।

॥ प्रथम भाग मित्रलाभ ॥

असाधन वित्तहीन बुद्धिमान् सुहृत्तम होंय तौ आशु कार्य्य सिद्धि करें यथा काक कूर्म्म मृग आखुके भये ॥

राजपुत्र बोले यह कैसे भया । वह बोला । गोदावरी तीर पर एक विशाल शाल्मली तरु है । तहां नानादिक्देशागत पक्षी रात्रिसमय निवास करते हैं । पश्चात् कदाचित् रात्र्यवसान में भगवान् कुमुदिनीनायक चंद्र अस्ताचल चूड़ाऽवलम्बी भये तब लघुपतनक नाम वायस प्रबुद्ध भया, और कृतान्तमिव अटन करते व्याध को देखा । तिसे अवलोकन कर चिन्ता करनें लगा । आज प्रात ही अनिष्ट दर्शन भया है । न जानिये क्या अनभिमत दृष्टि पड़ेगा ॥

ऐसे कह अनुसरण क्रम कर्के व्याकुल होय चलित भया क्योंकि । सहस्र शोकस्थान और शत भयस्थान दिवस २ मूढ में आवेश करते हैं पंडित में नहीं ॥

॥ और विषयियों को यह अवश्य कर्त्तव्य है ।

प्रथम उत्थान कर्के उपस्थित जो महत् भय उस को बिचारे । मरण व्याधि शोक में से आज क्या निपतन होगा ॥

पश्चात् उस व्याध ने तण्डुलकणों को विकीर्ण कर उन के ऊपर आ-

ल को विस्तीर्ण कर आप प्रच्छन्न होय स्थित भया। इस काल में चित्रग्रीव नाम कपोतराज सपरिवार वियत् में उड़ता २ तण्डुल कणों को अवलोकन किया। तदनन्तर कपोत राज नें तण्डुलकणलुब्ध कपोतों के प्रति कहा। यहां निर्जन बन में तण्डुल कणों का संभव कहां? तन्निरूपण करो। मैं भद्र नहीं देखता प्राय इन तण्डुलकण लोभ से हमारी भी वह गति होगी यथा कंकण लोभ से सुदुस्तर पंक में मग्न होय वृद्ध व्याघ्र से एक पथिक निपातन किया गया। यह श्रवण कर कपोतों नें कहा यह कैसे भया। उसने कहा। मैं नें एक समय दक्षिणारण्य में विचिरते २ देखा। एक वृद्ध व्याघ्र स्नान कर कुशहस्त में ले सर तीरपर कहता था। भो पान्थ ये सुवर्ण कंकण लो तदनन्तर लोभाक्रष्ट किसी पान्थ से आलोचित भया ब्राह्मण बोला। भाग्य से ऐसा संभव होता है किन्तु इस आत्मसन्देह में प्रवृत्ति विशेय नहीं है। यथा। अनिष्ट से इष्ट लाभ में भी शुभगति नहीं प्राप्त होती जहां अम्टत में विष का संसर्ग है॥ तहां निश्चय मृत्यु है॥ किन्तु सर्वत्र अर्थार्जन में संदेह पूर्वक प्रवृत्ति है। तथाचोक्तम्।

संशय पर आरोहण किये विना नर भद्र भी नहीं देखता पुनः संशय पर आरोहण किये से जो जीवित रहे तो भद्र देखे। सो निरूपण करता हूं। तब पान्थ ने प्रकाशता से कहा।

तुम्हारा कंकण कहां है ? व्याघ्र ने हस्त प्रसारण कर दिखाया। तब पान्थ बोला। तुम मारात्मक हो तुम में विश्वास कैसे करें ? व्याघ्र बोला। सुन रे पान्थ मैं प्राक् यौवन दशा में अति दुर्वृत्ती था और अनेक गो ब्राह्मण के बध से मेरे पुत्र दारा हत भये और वंश हीन भया तब केनचित् धार्मिक ब्राह्मण से मैं आदिष्ट भया जो दान धर्मादिक का आचरण करो तदुपदेश से मैं इस काल में स्नान शील और दाता और अब गलित नख दंत भया कहो विश्वास भूमि कैसे नहीं हूं। लिखा है।

इज्य, अध्ययन, दान, तप, सत्य धृति, क्षमा, और अलोभ, ये अष्ट प्रकार के धर्म्म मार्ग है; तहां पूर्व के चतुर्वर्गदंभार्थ भी सेवन किये जाते हैं। और उत्तर के चतुर्वर्ग महात्माहो में रहते हैं। मुझे यहां पर्य्यन्त लोभविरह है जो स्वहस्तस्थ कंकण के देने की इच्छा करता हूं॥

तथापि व्याघ्र मनुष्य को भक्षण करता है यह लोकाऽप वाद दुर्निवार है। लोक गताऽनुगतिक हैं क्योंकि धर्मोपदेशिनी कुट्टनी का इतना प्रमाण करें जैसा गोघ्न द्विज की माने। सुन मैं नें भी धर्म्म शास्त्राऽध्ययन किया है।

यथा निज आत्माऽभीष्ट प्राण है तथा अन्यप्राणियों के भी जानिये इस हेतु साधुजन आत्मौपम्य से भूत में दया करते हैं॥ अन्य।

प्रत्याख्यान, दान, सुख दुःख, और प्रिय अप्रिय में पुरुष आत्मौपम्य से प्रमाणाधिगमन करे ॥ पर दारा को मातृवत् परद्रव्य को लोष्टवत् और सर्व भूत में आत्मवत् दृष्टि करे उसे पंडित जानिये ॥

तुम अतीव दुर्गत हो तिस से तुम्हें देने को सयत्न हूं तथाचोक्तम् ॥ हे कौन्तेय दरिद्रों का भरणपोषण कर औ ऐश्वर्यवान् को धन मत दे क्योंकि व्याधित को औषधपथ्य है नीरुज को औषध से क्या लाभ ॥ दातव्य दान अनुपकारी के अर्थ दीजे । देश काल पात्र में जो दान है सो सात्विक दान है ॥ तिस से तुम सर में स्नान कर सुवर्ण कंकण को लो । तदनन्तर इस ब्राह्मण ने तद्वचन प्रतीत कर लोभ से स्नान निमित्त सर में प्रवेश किया, त्यों ही महा पंक में निमग्न और पलायन करने को असमर्थ भया । तिसे पंक में पतित देख व्याघ्र बोला, अहह ! तुम क्या महा पंक में निमग्न भये ? अब मैं तुम्हारा उत्थापन करता हूं इतना कह शनैः शनैः समीप जाय उस व्याघ्र नें धरा ; तब वह पान्थ चिन्तन करनें लगा । दुरात्माओं का धर्म्मशास्त्र पठन करना वा वेदाध्ययन करना कुछ सार्थक नहीं । क्योंकि स्वभाव सर्वोपर है यथा गोपय प्रकृति ही सेमधुर ॥ अब अजितेन्द्रियचित्त वालों की क्रिया हस्ति स्नान समान है यथा दुर्भगाभरण प्राय बिना क्रिया ज्ञान भार है ॥

मैं ने उत्तम न किया जो मारात्मक में विश्वास किया ॥ तथा चोक्तम् ॥ श्रृंगीयों का नदी का नखी का शस्त्रपाणिका विश्वास नहीं कर्त्तव्य है तैसे स्त्री और राजकुल का भी विश्वास न करिये ॥ स्वभाव से सब की परीक्षा होती है इतर गुण से नहीं क्योंकि सर्वगुणों को उल्लंघन कर स्वभाव मूर्द्ध पर स्थित रहता है ॥ गगन विहारी, कल्मषध्वंसकारी, दश शत करधारी, और ज्योतिषां मध्यचारी, जो विधु, सो भी विधि योग से राहु से ग्रसित होता है इस से ललाट लिखित प्रोज्झना करनें को कोई समर्थ नहीं यह तौ ऐसा चिन्तन करता ही रहा और व्याघ्र इसे व्यापादित कर के खा गया ॥ इसी से मैं ने कंकण स्यतुलोभेन इत्यादिवाक्य कहे ॥ इस कारण अविचारित कर्म्म कदापि न करिये ॥ कहा है ?

सुजीर्ण अन्न, सुविचक्षण सुत, सुशासिता स्त्री, सुसेवित नृपति, सुचिन्त्यउक्त, सुविचार्य्यकृत सुदीर्घ काल में भी विक्रिया को नहीं प्राप्त होता है ॥

ये वचन श्रवण कर किसी कपोत नें सदर्प कहा यां यह क्या उच्चारण करते हो ?

आपत् काल उपस्थित होय तब वृद्ध के वचन् ग्राह्य हैं सर्वत्र ऐसे विचार से भोजन में भी अप्रवृत्ति होती है । इस भूतल

विषे अन्न पान संपूर्ण शंका से आपन्न हैं। तौ कहां प्रवृत्ति करें पुनः जीवन कैसे होय ॥

ईर्ष्यी—घृणी, असन्तुष्ट, क्रोधी, नित्यशंकित, पर भाग्योप जीवी, ये षट् दुःख भागी हैं ॥ यह श्रवण कर संपूर्ण कपोत तहां उपविष्ट भये। सुमहत्, शास्त्राऽध्ययन कर्त्ता, बहुश्रुत सर्व संशय छेता भी लोभ मोहित होकर क्लेश सहन कर्त्ता है ॥ लोभ से क्रोध, काम, मोह प्रभव होते हैं और लोभ ही पाप कारण है ॥

अनन्तर सर्व पक्षी जाल निबद्ध भये। तब जिस के वचन प्रामाण्य से अवलंवित भये थे उस का सब तिरस्कार करनें लगे ॥ लिखा है। गण के अग्र न चलिये, कार्य्य सिद्धि होय तौ फल समान यदि कार्य्य की विपत्ति होय तौ मुखर का हनन किया जाय ॥ इन्द्रियों का असंयम आपदा का मार्ग है औ तज्जय संपदा मार्ग है जिसे जोइष्ट होय उसी में जाय ॥ तिस का तिरस्कार श्रवण कर चित्रग्रीव बोला। यह इस का दोष नहीं है ॥

आपदामापतन्तीनां हितः अपि हेतुतां याति यथा वत्सस्य बन्धने मातृजंघा स्तम्भी भवति। जो विपन्नों के आपदुद्धरण करनें में समर्थ होय सोबन्धु और भीत से परित्राण इच्छुक वस्तूपालम्भ पण्डित नहीं होता ॥ विपत्काल में विस्मय ही का

पुरुष का लक्षण है इस से अब धैर्य्य, उपालंभ कर प्रतिकार चिंतन करो ॥ यथा ॥ विपत् में धैर्य्य, अभ्युदय में क्षमा सदस्मेवाक् पटुता, युध में विक्रम, यश में रुचि, श्रवण में व्यसन, ये महात्माओं के प्रकृति सिद्ध हैं ॥ जिसे संपत् में हर्ष औा विपद् में विषाद नहीं है रण में धीरत्व है ऐसा भुवनत्रये का तिलक जननी विरला सुत जनती है। भूति इच्छा कारक पुरुष को षट् दोष हातव्य हैं यथा निद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य, और दीर्घसूत्रता ॥

अब ऐसा करो संपूर्ण एकचित्त होय जाल ग्रहण करके उड़ो ॥ अल्पवस्तु की भी संहति कार्य्य साधक होती है तृण गुणत्वापन्न होनें से मत्त दन्ती का बंधन करते हैं ॥ स्वकुल जन जनित अल्प संहति भी श्रेयसी होती. है यथा तुषात्यक्त तन्दुलों का प्ररोहण नहीं होता ॥ ऐसा चिन्तव कर सर्व पक्षी जाल का आदान कर उत्पतित भये ॥ अनन्तर वह व्याघ्र दूर से जालापहारकों को देख चिन्तन करता २ पश्चात् धावित भया और बोला ॥

विहंगमों नें संहति कर मेरे जाल को हरण किया पर जवनिपतित होंगे तब मेरे वश में आवेंगे ॥

तदनन्तर जब वे चक्षुर्विषयातिक्रान्त भये तब वह भी नि-

वृत्त भया । लुब्धक को निवृत्त देख कपोत बोले । इस काल क्या कर्त्तव्य है । चित्रग्रीव नें कहा ।

माता मित्र पिता स्वभाव से हित जनक हैं अन्य कार्य्य कारण से हित बुद्धी होते हैं—अस्मदादिक का मित्र हिरण्यक नाम मूषक राज गण्डकी के तीर चित्रवन में निवास करता है सो अस्मदादिक के पाश छेदन करेगा यह आलोचन कर सब हिरण्यक विवर समीप गये । हिरण्यक सर्वदा अपायशंका से शत द्वार विवर कर निवास करता । ततः हिरण्यक कपोतावपात भय से चकित होय तूष्णीं भया । चित्रग्रीव बोला हे सखे हिरण्यक अस्मदादि से संभाषण क्यों नही करते? ततः हिरण्यक तद्वचन का प्रत्यभिज्ञान कर्के और ससंभ्रम वहिः निःसरण करके कहा । आः मैं पुण्यवान हूं मेरा प्रिय सुहृत् चित्रग्रीव आज प्राप्त भया ॥

जिस का मित्र के साथ संभाषण संस्थिति वा संलाप होता है उसके समान पुण्यवान कोई नहीं है ॥

अथ इन्हें पाश बद्ध दृष्टि कर सविस्मय क्षण मात्र स्थित होय बोला। हे सखि यह क्या है। तब चित्रग्रीव नें कहा हे सखे अस्मदादि का प्राक्तन जन्म जनित कर्म्म फल है।

लिखा है ॥ यस्मात् येन यथा यदा यत् यावत् यत्र शुभवा

जो कुछ आत्मकर्म शुभ अथवा अशुभ हुआ है सो उस हेतु से उस के साथ उस प्रकार उस काल वही उसी वहां विधाहवश से उपेत होता है ॥ यह श्रवण कर मूषक चित्रग्रीव के बन्धन छेदन करने को सत्वर उपक्रम करने लगा। तब चित्रग्रीव बोला। हे मित्र ऐसा मत करो। किन्तु प्रथम मेरे आश्रितों के पाश छेदन करो हिरण्यक बोला। मैं अल्पशक्ति हूं और मेरे दन्त कोमल हैं इस निमित्त इन के पाश छेदन करने को कैसे समर्थ हूंगा। सो जब तक मेरे दन्त त्रुटित न होवें तब तक तुम्हारे पाश छेदन करूंगा अनन्तर इन के भी निज शक्तनुसार छेदन करूंगा। चित्रग्रीव ने कहा। एवं अस्तु। तथापि यथाशक्ति इन के बन्धन खण्डन करो हिरण्यक ने कहा। भाई आत्मपरित्याग से जो आश्रितों का परिरक्षण है सो नीति वेत्ताओं को सम्मत नहीं है॥ क्योंकि (कहा है कि) आपत् के अर्थ धन का रक्षण करना धन से दारा का रक्षण करना (और) धन और दारा इन दोनों से सतत आत्मा का रक्षण करना। धर्म अर्थ काम मोक्ष इन के संस्थिति का हेतु प्राण है इस कारण इस के हनन से किसका हनन नहीं होता और इस के रक्षण से किस का रक्षण नहीं। चित्रग्रीव बोला। यथार्थ कहते हो नीति तो ऐसी ही है किन्तु मैं अपने आश्रितों के दुःख सहन करने को सर्वथा असमर्थ हूं इस निमित्त ऐसा कथन कर्ता हूं। इस लिये कि—

प्राण, जीवन और धन, परार्थ उत्सर्जन करते हैं। क्योंकि नियत विनाश में सन्निमित्त त्याग ही वर है। और अपर असाधारण हेतु यह है कि। ये जाति द्रव्य बल में मेरे समान हैं। तो मेरे प्रभुत्व का फल किस काल में क्या होगा सो कहो। बिना वर्तन से मेरे चरित्र को त्याग नहीं करते इस हेतु प्राणव्यय से भी इन मेरे आश्रितों को जिवा। हे मित्र मांस मूत्र पुरीष अस्थि निर्मित और विनश्वर कलेवर के विषय आस्था को त्याग कर मेरे यश का पालन कर। यदि अनित्य मलवाही काय से नित्य निर्मल यश मिले तो क्या अलभ्य है। शरीर और गुणों का अत्यन्त अन्तर है। शरीर क्षण विध्वंसी है और गुण कल्पान्त स्थायी है॥

यह श्रवण कर हिरण्यक प्रहृष्ट मन और पुलकित होय बोला। साधु मित्र साधु। इस आश्रितवात्सल्यभाव से तुम्हारे विषे त्रैलोक्य के प्रभुत्व की योजना करनी उचित है। ऐसे कथन कर उस ने सभों के बंधन छेदन किये। अनन्तर हिरण्यक सब का सादर पूजन कर बोला। हे सखे चित्रग्रीव जाल बन्धन विधि में दोष की आशंका कर आत्म अवज्ञा सर्वथा नहीं कर्तव्य है। क्यों-कि खग शत योजन से अधिक आमिष दृष्टि करते हैं वेभी काल प्राप्त भये पाशबन्ध को दृष्टि नहीं करते। अपरंच। शशि दिवाकर को ग्रहपीडा, गजभुजंगम को बन्धन, मतिमान् को दरिद्रता, वि-लोकन करता हूं। इस हेतु मेरी मति में विधि बलवान् है।

ग्रीर। व्योम के एकान्त में विहार करनेहारे विहंगम ग्रापदा को प्राप्त होते हैं ग्रीर ग्रगाधजलिक समुद्र से मछलों का बधन होता है। तो इस विषय में दुर्नीत क्या है ग्रीर सुचरित क्या है ग्रीर स्थान लाभ में गुण क्या है काल ही ब्यसन रूपी हस्त प्रसारित करके दूर से भी ग्रहण कर्त्ता है॥ ऐसे प्रबोधन करके ग्रातिथ्य ग्रीर ग्रालिंगन कर संप्रेषित किया ग्रीर चित्रग्रीव भी सपरिवार यथेष्ट देश को प्राप्त भया ग्रीर हिरण्यक भी स्वबिवर में प्रविष्ठ भया ॥

। मित्रलाभ ।

हम लोगन को उचित है कि ग्रनेक मनुष्यों से मित्रता करें देखो मूषक की मित्रता से कपोत मुक्त बन्धन भये ॥

तब सर्ववृत्तान्तदर्शी लघुपतनक काक ने ग्राश्चर्य्य यह कहा। ग्रहो हिरण्यक तुम श्लाघ्य हो तुम्हारे साथ मित्रता की इच्छा करता हूं ग्राप मुझे मैत्र भाव से ग्रनुग्रह करने को समर्थ हैं। यह श्रवण कर हिरण्यक भी विवर के ग्रभ्यन्तर से बोला तुम कौन हो उस ने कहा मैं लघुपतनक नामा वायस हूं हिरण्यक विहँस कर बोला। तुम्हारे साथ मैत्री कैसी। बुध को चाहिये कि लोक में जो जिस के साथ युक्त होता है उस के साथ उस का योजन करे। मैं ग्रन्न ग्रीर ग्राप भोक्ता तो प्रीति कैसे होगी। भक्ष्य भक्षक की प्रीति विपत्ति का कारण है जैसे ग्राग-

बद्ध मृग को शृगाल से काक ने रक्षित किया ।

वायस बोला यह कैसे भया । हिरण्यक कहने लगा । मगध देश में चंपकावती नाम अरण्यानी तिस में चिर काल से महान् स्नेह से मृग काक निवास करते रहे उस हृष्ट पुष्टांग मृग को अपनी इच्छा से भ्रमण करते किसी शृगाल ने अवलोकन किया तिसे देख शृगाल चिन्तन करने लगा । आः यह सुललित मांस कैसे भक्षण करूंगा । भला प्रथम विश्वास उत्पादन करूं । यह आलोचन कर निकट जाय बोला । मित्र कुशल से हो । मृग बोला । तू कौन है । उस ने कहा क्षुद्र बुद्धि नामा जम्बुक हूं । मैं इस अरण्य में बन्धुहीन मृतवत् निवास करता हूं । अब तुम को मित्र आसादन कर पुनः सबन्धु होय जीव लोक में प्रविष्ट भया अब मैं सर्वथा तुम्हारा अनुचर होऊंगा । मृग बोला एवमस्तु । इस के अनन्तर मरीचिमाली भगवान् सविता अस्तगत भये वे दोनों मृग के वासस्थान को गये । तहां सुबुद्धि नामा काक मृग का चिरमित्र चम्पक वृक्ष की शाखा पर निवास करता था । उन दोनों को देख कर बोला । हे सखे यह द्वितीय कौन है । मृग बोला यह जम्बुक है और अस्मदादि से सख्य भाव की इच्छा कर आया है । काक बोला । मित्र अकस्मादागत के साथ मित्रता युक्त नहीं है । ऐसा उक्त है कि ॥

किसी अज्ञात कुलशील को वास अदेय है क्योंकि मार्जार के

दोष से जरद्गव गृध्र का हनन भया। यह सुन उन्हों ने कहा यह कैसी वार्त्ता है। तब काक कहने लगा ॥

भागीरथी तीर पै गृध्रकूट नाम पर्वत पर एक महान् पर्कटी वृक्ष रहा तिसकी कोटर में दैवदुर्व्विपाक से गलित नख नयन जरद्गव नाम गृध्र वास करता और कृपाकर उसके जीवनार्थ उस वृक्षवासी पक्षी निज आहार से किंचित् किंचित् उद्धरण कर के देते उसी से उस का जीवन होता। एक दिन दीर्घकर्ण नामा मार्जार पक्षिशावकों के भक्षण करने के निमित्त वहां आया।

तब उसे आया देख भयार्त्त पक्षिशावकों ने कोलाहल किया। यह श्रवण कर जरद्गव बोला। यह कौन आता है। दीर्घकर्ण गृध्र को अवलोकन कर सभय बोला। हाय मैं मारा गया। जब तक भय अनागत है तब तक भय से भेतव्य है और आगत भय वीक्षण कर नर को यथोचित करना उचित है ॥

अब सन्निधान से पलायन करने को अक्षम हूं। जो कुछ भवितव्य है सो होय पर विश्वास उत्पादन कर इस के समीप उप-गमन करूं यह आलोचन कर समीप जाय बोला हे आर्य्य तुम्हें अभिवन्दना करता हूं। गृध्र बोला दूर अपसरण कर नहीं तो तू मुझ से मारा जायगा। मार्जार बोला, प्रथम मेरे वचन श्रवण करो तिस के अनन्तर यदि मैं वध्य हूं तौ हनन करो। क्योंकि। जाति

आप ही से कोई पूज्य वा वध्य नहीं व्यवहार के परिणाम से व-ध्य वा पूज्य होता है ॥

गृध्र बोला किस लिये आये हो। वह बोला। यहां गंगा तीर पर मैं नित्यस्नायी निरामिष ब्रह्मचारी चान्द्रायण व्रत आचरण कर निवास करता हूं तुम धर्म्मज्ञानरत विश्वासभूमि हो यह वार्त्ता सर्व पक्षी मेरे आगे प्रस्तुत करते हैं आप मुझ से विद्या और वय में वृद्ध हैं इस निमित्त धर्म्म श्रवण करने को यहां आया हूं। आप एतादृश धर्म्मज्ञ होय कर भी मुझ अतिथि के हनन करने को उद्यत भये गृहस्थों का तो यह धर्म्म है।

यदि अरि गृहागत होय तो भी आतिथ्य धर्म्म करना उचित है जैसे द्रुम, छेदन करनेवाले कोभी पार्श्वगत छाया का उपसंहार नहीं करता ॥ यदि धन नहोय तो प्रीति युक्त वचन से ही अतिथि पूजनीय होता है। क्यूंकि। तृण भूमि उदक चौथा सूनृत वाक्य ये वस्तु सत्पुरुषों के गेह में कदाचन उच्छिन्न नहीं होतीं। साधु लोग निर्गुण पर भी दया करते हैं जैसे चंद्र चांडाल के वेश्ममें निज ज्योत्स्ना का कुछ संहार नहीं करता है॥ द्विजातियों का गुरु अग्नि वर्णों का गुरु ब्राह्मण स्त्री का गुरु पति और सभों का गुरु अभ्यागत है ।

जिसके गृहसे अतिथि भग्नाश होकर निवृत्त होता है वह

उसे दुष्कृत देकर और उस का पुण्य आदान करके जाता है उत्तम वर्ण में गृह पै नीच का भी आगमन होय तौभी वह यथा योग्य पूजनीय है क्योंकि अतिथि सर्वदेवमय है ।

गृध बोला मार्जार को मांस की रुचि अधिक होती है और यहां पक्षिशावक निवास करते हैं इस कारण मैं ऐसा कहता हूं । यह सुनकर मार्जार भूमि स्पर्श कर कर्ण स्पर्श करने लगा और कहने लगा मैं ने धर्म शास्त्र सुन वीतराग होय यह दुष्करचान्द्रायण व्रत का अध्यवसाय किया क्योंकि परस्पर विवदमान जो धर्मशास्त्र उनका मत यही है जो अहिंसा परम धर्म है ।

जो सर्व हिंसा निवृत्त हैं और सर्वसह हैं और सर्व के आश्रयभूत हैं वे स्वर्गगामी हैं। एक धर्म ही सुहृद् है जो निधन होने से भी अनु गमन करता है और संपूर्ण शरीर के साथ नाश होते हैं । जब कि कोई किसी का मांस खाता है तब दोनों का अंतर देखो एक की क्षण भर की प्रीति है और दूसरा प्राण से जाता है । (मुझे) मरना है यह दुख जब पुरुष को उत्पन्न होता है तब इस विचार से (उस पुरुष करके) अन्य भी रक्षित हो सकेगा। स्वच्छन्द वनजात शाकादि से भी उदर पूर्ण होता है तौ इस दग्धोदरार्थ कौन महापातक करै। ऐसे विश्वास उत्पन्न कर वह मार्जार तरु कोटर में स्थित भया। तिस के अनन्तर कुछ दिवस व्यतीत भये पक्षि शावकों का

आक्रमण कर कोटर में लाकर प्रत्यह खाने लगा ।

जिनके अपत्य खादित ज़ए थे उन्हों ने शोकार्त्त होय विलाप करते ज़ए इतस्ततः जिज्ञासा समारब्ध की। तिसका परिज्ञान कर मार्जार कोटर से निःसरण कर वाहर पलायित भया । पश्चात् पक्षियों ने इतस्ततः निरूपण कर कोटर में शावकों के अस्थि पाये । अनन्तर इसी जरद्गव करके अस्मदादि के शावक खादित भये हैं यह संपूर्ण पक्षियों से निश्चित किया गया और गृध्र व्यापादित भया—इस निमित्त मैं ने अज्ञात कुलादि वाक्य कहे । यह श्रवण कर वह जम्बुक सकोप बोला । मृग के प्रथम दर्शन दिवस आप भी अज्ञात कुलशील थे तो आप की इन के साथ स्नेहाऽनुवृत्ति उत्तरोत्तर कैसे भई ॥

जहां विद्वज्जन नहीं तहां अल्पधी भी स्ताघ्य है जैसे निरस्तपादप देश में एरण्ड भी द्रुमता को प्राप्त होता है । यह निज है और यह पर है यह गणना लघुचेतसों की है, और उदारचरितों की तौ वसुधाही कुटुम्बसम है ॥

जैसा यह मृग मेरा वन्धु है वैसे आप भी। मृग ने कहा। इस उत्तर से कौन लाभ है सब एकत्र विश्रंभाऽऽलाप करते सुख पूर्वक निवास करें ।

न कोई किसी का मित्र है न कोई किसी का रिपु परन्तु व्यव
हार से मित्र और रिपु उत्पन्न होते हैं।

तब काक ने कहा ऐसाही है। पीछे प्रातः काल भये यथाभि-
मत देश को गये। एक समय निभृत में शृगाल ने कहा। हे सखे
इसी बन के एक देश में शस्यपूर्ण क्षेत्र है उस क्षेत्र को मैं
तुम्हें लेजाकर दिखाऊंगा। ऐसा करने से मृग प्रत्यह वहां जाकर
शस्य को खाया करता। कई दिन उपरान्त क्षेत्रपतिने क्षेत्र को
देखकर पाश रोपा। इस के अनन्तर पुन रागत मृग पाश से बद्ध
होय चिन्तन करने लगा। अब यहां मित्र से अन्य इस कालपाश-
सम व्याधपाश से छुड़ाने को कौन समर्थ है। अनन्तर जम्बुक
वहां आकर उपस्थित हुआ और चिन्तन करने लगा। कि हमारे
कपट प्रबन्ध से मनोरथ की सिद्धि फलित भई। अब इस काटे-
भये मृग का मांस और असृक् लिप्त अस्थि अवश्य प्राप्त होंगे तिस
से बाहुल्य से भोजन होगा। मृग उसको देख उल्लासित हो
बोला। सखे मेरे बंधन सत्वर छेदन कर मेरी रक्षा करो। लि-
खा है।

आपदामें मित्र, युद्ध में शूर, ऋण में शुचि, क्षीणवित्तमें भा-
र्य्या, और व्यसन में बान्धव की परीक्षा होती है।

उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, राजद्वार और श्मशान

में जो उपस्थित रहे सो बांधव है।

जम्बुक पाश अवलोकन कर बारंबार चिन्तन करने लगा कि बन्धन तो दृढ हैं। फिर बोला। सखे ये स्नायुनिर्म्मित पाश हैं और आज भट्टारक बार है इस से इन बन्धनों को कैसे स्पर्श करूं। हे मित्र जो चित्त में अन्यथा न मानो तो प्रभात जो कुछ तुम कहोगे सो मैं अवश्य करूंगा। अनन्तर वह काक प्रदोष काल में मृग को अनागत अवलोकन कर फिर इधर उधर अन्वेषण करके और उसे बंधन में देख बोला। सखे यह क्या है? मृग बोला यह अवधीरित सुहृद्वाक्य का फल है। जैसा कहा है।

सुहृद् और हितकामों के भाषित को जो नहीं सुनता है उसकी विपत सन्निहित मानिये और उसे शत्रु नंदन जानिये।
दीप निर्वाण की गंध। सुहृद्वाक्य,। और अरुंधती का तारा इन को गताऽऽयुष पुरुष क्रम से न सूंघता है न सुनता है न देखता है॥

काक ने कहा। वह वंचक कहां है। मृग बोला मेरा मांसार्थी यहां ही वैठा है। काक बोला मैं ने तो तुम से पहले ही कहा था।

और। मेरा अपराध कुछ नहीं है यह बात विश्वास करनेमें कारण नहीं क्योंकि दुष्टों से गुणवान को भी भय होता है।
जो परोक्ष में कार्य्यंको हानि करे और प्रत्यक्ष प्रियवादी हो

ऐसे मित्र को पयोमुख विषकुंभ की भांति त्याग कीजे

फिर काक दीर्घनिःश्वास ले बोला । अरे वंचक पापकर्मी तू ने यह क्या कर्म किया। ऐसा कहा है ।

जो इस लोक में मधुर वचन से संलापित, मिथ्या उपचार से वशीकृत आशावान, श्रद्धावान, हैं उन अर्थियोंको कुछ वंचयितव्य नहीं है ।

उपकारी, विश्रब्ध, शुद्धमति, जन से जो पाप का आचरण करता है, ऐसे असत्यसन्ध जन का हे भगवति वसुधा तू कैसे वहन करती है

दुर्ज्जन के साथ सख्य और प्रीति कभी न करनी क्योंकि अंगार उष्ण होय तो हस्त का दहन करे और शीतल होय तो हस्त को कृष्ण करे ।

अथवा दुर्ज्जनों की ऐसी ही स्थिति है ।

पाद के साम्हने गिरता है फिर पृष्ठ मांस खाता है तब कर्ण के पास जाता है और शनैः शनैः कुछ गाता है फिर छिद्र निरूपण कर अशंक हो सहसा प्रवेश करता है इस रीति से खल के संपूर्ण चरित्र मशक धरता है ।

दुर्ज्जन प्रियवादी भी हो तो भी वह विश्वास कारण नहीं है क्योंकि उसके जिह्वाग्र में तो मधु रहता है पर हृदय में

हालाहल विष है ।

पीछे प्रातः काल समय काक ने क्षेत्र पति को लगुड हस्त में लिये उसी ओर आता अवलोकन किया । उस को देख काक बोला । हे सखे मृग तुम आत्मा को मृतवत् दिखा के वायु से उदर को फुला के और पैरों को स्तब्ध कर के रहो मैं तुम्हारे चक्षुओं को चंचु से खोदता हूं पर जब मैं शब्द करूं तब उठकर सत्वर पलाय जाना । मृग काक का वाक्य मान वैसेही हो कर रहा । क्षेत्र पति ने हर्षोत्फुल्ल लोचन से मृग को वैसे ही देखा और कहा । अहो यह तो आप ही मर गया । ऐसे कह कर मृग को बन्धन से मोचन कर सयत्न पाश ग्रहण करने लगा । तब काक का शब्द सुन मृग शीघ्र उठकर भागा । पीछे इस मृग के निमित्त फेंकी हुई लकड़ी से शृगाल मारा गया । सो कहा है ।

तीन वर्ष तीन मास तीन पक्ष वा तीन दिन में अत्युत्कट पाप और पुण्य का फल यहां ही होता है ।

इसी से मैं ने भक्ष्य भक्षकयोः इत्यादि वाक्य कहे । तब लघुपतनक फिर बोला ।

तुम्हारे भक्षण करने से भी मेरा पुष्कल आहार न होगा और मैं तो अनघ चित्रग्रीव की भांति तुम्हारे जीने से जीवता हूं । सुनो । पुण्यैककर्म्मवालों का पशु पक्षी में भी

विश्वास देखा है (जैसा तुम्हारा चित्रग्रीव का) क्योंकि स-त्पुरुषों का स्वभाव साधुशीलत्व से नहीं पलटता। और भी। कदाचित् साधु प्रकोपित भी होय तो भी उस का मनवि-कार को प्राप्त नहीं होता जैसे तृणोल्का से सागराम्बु तप्त नहीं होता है।

यह सुन हिरण्यक बोला। तुम चपल हो और चपल के साथ स्नेह करना सर्वथा योग्य नहीं है। कहा है।

मार्जार, महिष, मेष, काक, और कापुरुष, ये सब वि-श्वास करने से सिर पर चढ़ते हैं इस लिये इन का विश्वास करना उचित नहीं है।

और भी एक बात है कि तुम हमारे शत्रुपक्ष में हो। ऐसा कहा है॥

सुश्लिष्ट सन्धि होने से भी शत्रु से मेल न करिये क्योंकि सुतप्त भी पानीय वस्तु पावक को शमन कर देती है। दु-र्जन विद्या से अलंकृत भी होय तौ भी त्याग के योग्य है: जैसे मणि भूषित सर्प क्या भयंकर नहीं होता है। जो अ-शक्य है सो शक्य नहीं होता और शक्य है सो शक्य ही है जैसे उदक में शकट और स्थल में नौका। जो पुरुष महत् अर्थ सार से भी शत्रु में और विरक्त भार्य्या में विश्वास कर-

ता है उसका जीवन उस विश्वास के अन्त पर्य्यन्त ही है अ-
र्थात् वही उस के जीवन का अन्त है ॥

लघुपतनक बोला। तुम ने कहा सो सब मैं ने श्रवण किया। तथापि मेरा ऐसा संकल्प है जो तुम्हारे साथ सौहृद्य अवश्य करूंगा। कदाचित् तुम न करोगे तो अनाहार से निज आत्मा को नष्ट करूंगा। कहा है ॥

दुर्ज्जन मृद्घट के सदृश सुखभेद्य और दुःसंधान है
सुजन कनक घट के सदृश दुर्भेद्य औ आशु संधेय है।
द्रवत्व से सब लोहों का, किसी निमित्त से खग पक्षियों का,
भय और लोभ से मूर्खों का और दर्शन से सत्पुरुषों का सङ्ग होता है। सज्जनों का आकार नारिकेल सम दृष्टि पड़ता है अन्य अर्थात् असज्जन बदरिकाऽऽकार है जो ऊपर ही से मनोहर पर भीतर से कठोर होते हैं। स्नेह के छेद होने से भी साधुओं के गुण विकार को प्राप्त नहीं होते। जैसे मृणालों के भंग होने से भी उन के तन्तु अनुबंधन करते हैं। शुचित्व, त्यागिता, शौर्य्य, और सुखदुःख में सामान्यभाव, दाक्षिण्य, अनुरक्ति, और सत्यता ये सब सुहृद् के गुण हैं ॥

इन पूर्वोक्त गुणों से उपेत तुम से अन्य और कौन पुमान् है जो

मुझ से प्राप्त होने के योग्य है । इत्यादि वाक्य उसके सुन हिर-ण्यक बाहिर निकल कर बोला । मैं तुम्हारे वचनाऽमृत से तृप्त भया । जैसा कहा है ॥

घर्मार्त्त मनुष्य न तो सुशीतल जल के स्नान से, न मुक्ताऽव-ली से, न प्रत्यंग, अर्पित श्री खण्ड के विलेपन से ऐसा सुखी होता है जैसा उस का चित्त प्रीतियुक्त सज्जन के भाषित से सुख पाता है क्योंकि सुकृतियों का सद्युक्त पुरस्कृत भाषण आकृष्टि मंत्रोपम अर्थात् आकर्षण मंत्र के तुल्य है। और भी लिखा है । रहस्यभेद, याञ्चा, नैष्टुर्य्य, चलचित्तता, क्रोध, निःसत्यता, और द्यूत ये मित्र के दूषण हैं ।

इस वचन क्रम से एक दूषण भी तुम में नहीं लक्षित होता है । क्योंकि। पटुत्व, सत्यवादित्व का कथा के योग से बोध हो-ता है और अलुब्धत्व, अचापल्य ये प्रत्यक्ष ही जाने जाते हैं ।

और भी। स्वच्छान्तरात्मा का सौहार्द और ही रीति का होता है और शाठ्योपहतचेतों की वाणी और ही प्रकार से प्रवृत्त होती है । दुरात्माओं का मन और है वचन और है और कार्य्य और ही होता है । परन्तु महात्माओं का मन वच और कार्य्य तीनों एकही रहते हैं ।

अब तुम्हारा अभिमत होवे। ऐसे कहकर हिरण्यकनें मित्रता को और भोजन विशेष से वायस को संतुष्ट कर अपने विवर में धसा। तब वायस भी स्वस्थान को गया। पीछे वे दोनों अन्योन्य आहार प्रदान कुशलप्रश्न औ विस्रब्धालाप करके काल व्यतीत करने लगे। एक समय वायस ने हिरण्यक से कहा। हे सखे मुझे इस स्थान में कष्टसे आहार लभ्य होता है इस कारण इस को छोड़ स्थानान्तर जाने की इच्छा करता हूं। तब हिरण्यक बोला। कहा है।

दन्त केश नख और नर ये सब स्थानभ्रष्ट होने से शोभित नहीं होते हैं ऐसा समझ मतिमान पुरुष स्वस्थान का त्याग नहीं करते।

यह सुन काक बोला, मित्र ये किसी कापुरुष का वाक्य है। क्योंकि। सिंह सत्पुरुष और गज ये स्वस्थान छोड़ परदेश जाते हैं और काक और कापुरुष ये एकही स्थान में निधनको प्राप्त होते हैं क्योंकि।

वीर और मनस्वी को स्वदेश औ विदेश कौनसा है क्योंकि जिस देश में जाते हैं उस देश को अपने बाहु प्रताप से अर्जित करते हैं। जैसे दंष्ट्रा नख लाङ्गूल से प्रहार कारक सिंह जिस बन में जाता है उसी में हतद्विपेन्द्रबधिर से

अपनी आत्मा की तृष्णा को बुझाता है ।

यह सुन हिरण्यक बोला मित्र कहां चलोगे । क्योंकि कहा है ।

बुद्धिमान एक पाद से चलते हैं और एक पाद को स्थिर रखते हैं । पर स्थान को देख पूर्व आयतन को छोड़ते हैं ।

वायस ने कहा भाई एक सुनिरूपित स्थान है । तब हिरण्यक ने कहा कौन सा । वायस बोला । दण्डकारण्य में कर्पूर गौराख्य एक सर है तहां चिरकालोपार्जित मेरा प्रिय सुहृद् सह-जधार्मिक मन्थराभिधान कूर्म्म रहता है ।

परोपदेश में पाण्डित्य सब नरों को सुकर होता है । और धर्म्म में आप अनुष्ठान करै ऐसा कोई एक महात्मा है ।

वह मत्स्याहारविशेष से मांस को बढ़ावेगा तब हिरण्यक भी वह बोला कि मैं यहां अवस्थान करके क्या करूंगा क्योंकि ।

जिस देश में सन्मान, वृत्ति, और बांधव नहीं हैं और न विद्याका आगम है उस देश को छोड़ दीजे । और भी । धनी, श्रोत्रिय, राजा, नदी, और पांचवां वैद्य ये पांच जहां नहीं हैं वहां वास न करिये ।

लोकयात्रा, भय, लज्जा, दाक्षिण्य और त्यागशीलता जहां ये पांच न होयं तहां कभी न ठहरिये ।

हे मित्र वहां भी वास न करना जहां ये चार नहीं हैं

अर्थात् ऋणदाता, वैद्य, श्रोत्रिय और सजलानदी ।

इस से मुझे भी वहां लेचलो । पीछे वायस उस मित्र के साथ विचित्र कथालाप करता हुआ सुख से उस सर के समीप गया । तब मंथर ने दूरही से लघुपतनक को अवलोकन करके यथोचित आतिथ्य कर मूषिक का आतिथ्य और सत्कार करने लगा । कहा है ।

द्विजातियों का गुरु अग्नि है, वर्णों का गुरु ब्राह्मण है,
स्त्री का गुरु पति, और अभ्यागत सब का गुरु है ।

वायस बोला हे सखे मंथर इन का पूजन विशेष करके करना क्योंकि ये पुण्यकर्माओं में धुरीण कारुण्यरत्नाकर हिरण्यक नाम मूषिक राज हैं । इन के गुणों की स्तुति कदाचित् सहस्रद्वय जिह्वा से सर्पेश्वर करने को समर्थ होय तो होय ।

इतना कहकर चित्रग्रीव का संपूर्ण उपाख्यान वर्णन किया ।

मंथर ने सादर हिरण्यक का पूजन करके कहा । तुम्हारी आत्मा का भद्र होय अब तुम निर्जनवनाऽवस्थान का कारण कहो । हिरण्यक बोला । आप सुनो मैं कहता हूं । एक चंपकाभिधान नगरी है जहां परिव्राजक निवास करते हैं । तहां चूडाकरण नाम एक परिव्राजक रहता था । सो भोजनावशिष्ट भिक्षान्नसहित भिक्षापात्र को नागदन्तक में रखकर सोता ।

और मैं उस अन्न को उछल २ कर खाता । इस पीछे एक दिन उस का प्रिय सुहृद् वीणाकरण नाम परिव्राजक आया । उस के संग नाना कथा प्रसङ्ग होने लगा पर मेरे चासार्थ जर्जरवंशखण्ड से चूड़ाकरण भूमि को ताड़ना करता था । तब वीणाकरण बोला । सखे यह क्या है जो तुम मेरी कथा से विरक्त होकर अन्यासक्त होते हो । कहा है ।

प्रसन्नमुख, विमला दृष्टि, कथा का अनुराग, मधुर वाणी, अधिक स्नेह संभ्रमदर्शन, ये सब सदा अनुरक्तजन के लक्षण हैं । और । अतुष्टिदान, ज्ञातपूर्वनाशन, अमानन, दुश्चरिताऽनुकीर्त्तन और कथाप्रसंग से भी नाम की विस्मृति ये विरक्तभाव जन के लक्षण हैं ॥

तब चूड़ाकरण बोला । भद्र हो । मैं विरक्त नहीं हूं किन्तु देखो यह मेरा अपकारी मूषक सदा मेरे पात्रस्थ भिक्षान्न को खाता है । वीणाकरण ने नागदन्त को देख कर कहा । किस रीति से यह स्वल्प बल मूषिक इतनी दूरतक उछलता है । इस में कुछ कारण है । फिर क्षणमात्र चिन्तन कर बोला । इस में बाहुल्यसे अर्जन करना ही कारण है । क्योंकि ।

लोक में सर्व धनवान्ही सर्वत्र और सर्वदा बलवान् होते हैं देखो राजा में भी धनमूलही प्रभुत्व है ।

पीछे खनित्र आदान कर उस परिव्राजक ने मेरा विवर खोद चिर-कालोपार्ज्जित धन को ग्रहण किया । तब तो मैं निजशक्तिहीन और उत्साह से रहित हो स्व आहारके उत्पादन करने को अक्षम भया । मुझे आस सहित मन्द मन्द उपसर्पण करते हुए देख कर चूड़ाकरण कहने लगा ।

अर्थ से सब कोई बलवान् और पण्डित होते हैं देखो यह पापिष्ठ मूषिक अब स्वजाति समता को प्राप्त भया । अर्थ से परिहीन और अल्पमेधा पुरुषकी संपूर्ण क्रिया नाश होती है जैसे ग्रीष्म ऋतु में कुसरित् ।

जिस के पास अर्थ है उसी के मित्र और बान्धव बहुत होते हैं और लोक में वही पुमान् और वही पण्डित गिना जाता है ।

अपुत्र और सत्मित्र रहित पुरुष का गृह शून्य है, मूर्ख की दि-शा शून्य और दरिद्रता सर्व शून्य है ।

दारिद्र्य और मरण में दारिद्र्य को अवर कहा है क्योंकि मरण अल्पक्लेश से होता है परंतु दारिद्र्य अति दुःसह है ।

वही अविकल इन्द्री रहतीहै वही नाम रहताहै वही अप्रतिहत बुद्धि है वही वचन है परन्तु अर्थ की उष्मा से रहित होतेही पुरुष की क्षणमात्र में और ही दशा होजाती है यह विचित्र वार्ता है । यह सब सुनकर मैंने विचारा कि अब मुझे यहां अवस्थान करना

अयुक्त है और इस समय में औरों से यह वृत्तान्त कहना भी अनुचित है । क्योंकि ।

अर्थ का नाश मन का ताप, और गृह के दुश्चरित, बंधन अपमान ये सब मतिमान प्रकाश नहीं करते हैं । और भी । आयु, वित्त, गृहच्छिद्र, मंच, मैथुन, भेषज, तप, दान, और अपमान ये नव यत्न से गोप्य हैं ।

दैव के अत्यन्त विमुख होने से और पौरुष के यत्न व्यर्थ होने से दरिद्री मनस्वी को वनसे अन्य और कहां सुख है । मनस्वी पुरुष मरण को प्राप्त होता है पर कार्पण्य को प्राप्त नहीं होता जैसे अनल निर्वाणता को प्राप्त होता है परन्तु शीतता को प्राप्त नहीं होता कुसुमके स्तबक की भांति मनस्वी की दो वृत्ति हैं के तो सब के मूर्द्ध (शिर) पर रहता है अथवा वनमें विशीर्णता को प्राप्त होता है ।

यहां जो याच्ञा कर जीवना है सो अतीव गर्हित है । क्योंकि ।

विभवहीन को प्राण से संतर्पित अनल वर है पर उपचार से परिभ्रष्ट कृपण जन से प्रार्थना श्रेष्ठ नहीं है ।

और भी । दारिद्र्य से ह्री प्राप्त होती है ह्री परिगत भये सत्त्व से हीन होता है और निःसत्व भये तुच्छ होजाता है । फिर परिभव भये निर्वेद को प्राप्त होता है और निर्वेद से शोक को, शोकनि-

हत होने से निर्बुद्धिता को निर्बुद्धिताके क्षय होता है इस कारण निर्धनता संपूर्ण आपदाओं का आस्पद है । किंच । मौन वर है पर अनृत वचन कहना वर नहीं । क्लीब होना वर है पर परकलत्र का अभिगमन श्रेष्ठ नहीं । प्राणत्याग होना वर है पर पिशुनके वाक्य में अभिरुचि होना श्रेष्ठ नहीं । भिक्षाशी होना वर है पर परधनाऽऽस्वादनका सुख वर नहीं है । शून्य शाला श्रेष्ठ है पर दुष्ट वृषभ उसमें रखना वर नहीं है । वेश्या पत्नी होय तो वर है परंतु अनीता कुलवधू वर नहीं । आरण्य में वास होना वर है पर जिस पुर में अविवेकी अधिप होवे उस पुर में रहना वर नहीं । प्राणत्याग श्रेष्ठ है पर अधम पुरुषों का उपगम श्रेष्ठ नहीं है । और भी । जैसे । अखिल मान को सेवा, तम को ज्योत्स्ना, लावण्य को जरा, और दुरित को हरिहर कथा हरण करती है इसी रीति से अर्थिता शतगुण को भी हरती है । ऐसा विचार यही मन में आया क्यामैं पर पिण्ड से निज आत्मा को भोजन दूंगा । सो हो यह तो बड़ा कष्ट और केवल कष्ट ही नहीं किन्तु द्वितीय मृत्यु द्वार है । क्योंकि ।

पल्लवग्राहि पाण्डित्य, क्रयक्रीत मैथुन, पराधीन भोजन, ये तीनों पुरुष की विडम्बना है । और भी । रोगी, चिरप्रवासी, परान्नभोजी और परावसथशायी । इन में से जो जीवता है उस का

तो मरण है और जिसका मरण भया है वह उसका विश्राम है। इतनी बातें विचार कर फिरभी लोभ से अर्थ ग्रहण करने के निमित्त गृह बनाया। जैसा कहा है।

लोभ से बुद्धि चलायमान होती है,लोभ से तृषा जनित होती है तृषार्त मानव परलोक और इस लोक में भी दुःख को प्राप्त होता है।

तदनंतर वीणाकर्णने जर्झरवंशखण्ड से मुझ को ताड़ना दी तो मैंने यह चिन्तन किया। यथा।

धनलुब्ध, असन्तुष्ट, अनियतात्मा, वा जितेन्द्रिय होवे पर जिसका मानस तुष्ट नहीं उस को सब आपदा होती हैं। औरभी। जिसका मन सन्तुष्ट है उसको सब सम्पत्ति होती हैं जैसे उपानह से ढकाभया जो पाद है उसको संपूर्ण भू चर्म्मावृत सी है। सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त और शान्त चेतस् मनुष्यों को जो सुख है सो सुख इधर उधर दौड़नेवाले और जो धनलुब्ध हैं उन को कहां। उसीने सब पढ़ा है उसीनें सब सुना है और उसीने सब अनुष्ठान किया है जिसने आशा को पीछे कर निराशा का अवलम्ब लिया है। जिसने किसी ईश्वर का द्वार नहीं सेवा वा जिसने विरहव्यथा नहीं दृष्टिको और कभी क्लीब वचन जिसने नहीं कहा ऐसे पुरुष

का जीवन धन्य है (ऐसा कोई होता है) जो तृष्णा से वाह्य मान है उस को शतयोजन भी दूर नहीं और संतुष्ट जन के करप्राप्त भया भी अर्थ आदर नहीं पाता ।

इस से सब अवस्था में जो उचित कार्य्य है तिसका परिच्छेद श्रेय है ।

धर्म्म क्या है? भूतको दया, सौख्य क्याहै? जगत में जन्तुओं की आरोग्यता, स्नेह क्याहै, सद्भाव, पण्डित्य क्याहै? परिच्छेद करना । जब विपद्दशा प्राप्त होय तब उसका परिच्छेद करना ही पाण्डित्य है क्योंकि अपरिच्छेद कर्त्ता ओंको पद पद में विपत् होती है । कुल के निमित्त एक को त्यागिये, ग्रामके लिये कुल का त्याग कीजे, जनपद के हेतु ग्राम छोड़ दीजे, और आत्माके निमित्त पृथ्वी को त्याग दीजिये । निरायास पानीय और भयोत्तर स्वादुअन्न इन दोनों को विचार कर देखता हूं तो जिस में निर्वृति है उसी में सुख है यह विचार कर मैं निर्जन वन को चला आया । क्योंकि । व्याघ्र और गजेन्द्र से सेवित जो वन है सो श्रेष्ठ है द्रुम का आलय और पत्रफल अम्बु का भोजन वर है तृण शय्या और वल्कल का परिधान करना उत्तम पर बन्धुमध्य में धनहीन जीवन उत्तम नहीं है ।

पश्चात् निज पुण्योदय से इस मित्र से स्नेह की अनुवृत्ति करके मैं

अनुग्रह किया गया, और इस काल में पुण्य के उदय से स्वर्ग समान आप का आश्रय प्राप्त भया। क्योंकि ॥

इस संसार रूपी विष वृक्ष के दो मधुर फल हैं एक का अमृत स्वाद, द्वितीय सज्जन के साथ संगम होना। और भी ॥

सज्जन संगम, केशव की भक्ति, और गंगा जल से स्नान ये तीन इस असार संसार में सार हैं ॥

यह सुन मंथर ने कहा ॥

पादरज के सम अर्थ है और यौवन गिरि की नदी के वेग समान है, आयुष्य जल की लोल बिन्दु सम चपल है और फेन तुल्य जीवन ऐसा जानकर जो निश्चल मति स्वर्ग की अर्गल का उद्घाटन करनेवाले धर्म को नहीं करते सो जरा अवस्था में पश्चात्ताप से हत हो शोकाग्नि से दहन होते हैं ॥

आप ने अति संचय किया, उसी का यह दोष भया। सुनो।

उपार्जित वित्त का त्याग करना ही उस का रक्षण है, जैसे तड़ाग के उदरस्थ अम्भस का परीवाह ही श्रेष्ठ होता है। मितम्पच (सूम) जो पृथ्वी में वित्त गाड़ता है, सो निश्चय करके नीचे जाने के लिये निलय (घर) पहले से बनाता है। जो निज सौख्य का निरंधान कर धन के अर्जन करने की

इच्छा करता है वो परार्थ भार वाही की भांति केवल क्लेश ही का भाजन होता है । ऐसा कहा है ॥

दान और उपभोग से हीन जो धन उस से यदि धनी कहावे तो पृथ्वी के खात में निखात जो धन उस से हम सब कोई धनवान् हैं । दान और उपभोग से विहीन जिस के दिवस व्यतीत होते हैं वह कर्म्मकार की भस्त्र (लुहार की धोंकनी) की भांति स्वास लेता है, पर जीवता नहीं है ॥

जो अपना धन न किसी को देता है और न उपभोग करता है उस को उस धन से क्या अर्थ, उस बल से क्या अर्थ जो रिपु को बाधा न करे और उस श्रवण से क्या लाभ जब शास्त्राऽनुसार धर्म्म का आचरण न करे और जितेन्द्रिय न होवे तो उस आत्मा से क्या फल? ॥

कृपण के धन में कृपण पुरुष और इतर पुरुषों की असंभोग से समानता है, पर उस धन की हानि होने से जब कृपण दुःख को प्राप्त होता है तब जाना जाता है कि यह इसी का धन था ॥

कृपण का धन नतो देवता के लिये, न बंधु के अर्थ, न आत्मा के निमित्त व्यय होता है पर वह्नि, तस्कर, वा पार्थिव (राजा) से लिया जाता है ॥

ऐसा कहा है । प्रिय वाक् सहित दान, अगर्व्व ज्ञान, क्षमा

न्वित शौर्य्यं, और त्याग वर्जित वित्त, यह चतुर्भद्र (चार वार्त्ता) इस संसार में दुर्लभ हैं, अर्थात् किसी २ में होता है।

कहा है । संचय नित्य करना पर अति संचय न करना देखो यह संचय शील जम्बुक धनुष् से मारा गया ॥

हिरण्यक ने कहा यह कैसी वार्त्ता है सो कहो ? तब मंथर कहने लगा । कल्याण, कटक नगर में एक भैरव नाम व्याधी रहे वह मांस लुब्ध होय एक समय धनुष् ले विंध्य के अटवी के मध्य गया, और एक व्यापादित मृग को लेकर चला । चलते २ मार्ग में एक घोराकृति शूकर दृष्टि आया तब उस व्याध ने मृग को भूमि पर धर उस शूकर को शर से मारा शूकर ने घन की भांति घोर गर्जना कर उस के मुष्क देश (अंडकोश) में प्रहार किया तब व्याध छिन्नद्रुम की भांति भूमि पर गिरा ॥

कहा है । जल अग्नि विष शस्त्र क्षुधा व्याधि और गिरि से पतनादि कोई निमित्त पाकर देही प्राण को छोड़ता है ॥

पीछे उन दोनों के पद के आस्फालन (पैरों का चलाना) से एक सर्प भी मर गया । इस में दीर्घरव नाम जम्बुक निज आहार के लिये परि भ्रमण करता ऊआ वहां आया, इन मृतक मृग, व्याध, सर्प, और शूकर, को देख चिन्तन करने लगा कि मुझे आज बऊत सा भोजन मिला ॥

जैसे देही (देहधारी) को अचिन्तित दुःख आता है तैसे

जो कुछ भी होता है वह मैं मानता हूं पर तौ भी दैवगति सब से बलवान् है ॥

अब इन के मांस से मेरा भोजन तीन मास से भी कुछ अधिक होगा ॥

एक मास नर मांस से, दो मास मृग, और शूकर के मांस से, एक दिन अहि मांस से, पर आज तो धनुर्गुण (चिल्ला) भक्ष्य है ॥

इस से बुभुक्षा में यह निःस्वाद जो स्वच्छ लग्न स्नायु बंधन खाता हूं। यह कहकर उस ने वैसा ही किया। तब छिन्न स्नायु बंधन होकर उत्पतित धनुष् से उस का हृदय भिन्न भया और वह पञ्चतत्व को प्राप्त भया इस कारण कर्त्तव्यः संचयो नित्यं इत्यादि वाक्य मैं ने कहे ॥

जिस धन को देता है और जिस का भोग करता है वही उस का धन है नहीं तो मृतक पुरुष के धन और दारा से अन्य ही लोग क्रीड़ा करते हैं ॥

अब उस अति क्रान्त उप वर्णन करने से क्या लाभ है ॥

कहा है। पंडित बुद्धि नर अप्राप्य वस्तु की वांछा नहीं करते और नष्ट वस्तु का सोच भी नहीं धरते और आपदा में भी मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥

इस कारण हे सखे तुम को सर्वदा सोत्साह होना उचित है ॥

क्योंकि । शास्त्र पढ़कर भी मूर्ख होते हैं इस से जो क्रियावान् पुरुष है वही विद्वान् है । जैसे सुचिन्तित औषध नाम मात्र से आतुरों को निरोगी नहीं करती ॥

और भी । जो अध्यवसाय (उद्योग) में भीरु है तिस को विज्ञान विधि कुछ गुण नहीं करती जैसे अंध के हस्त-तलगत प्रदीप क्या अंध को अर्थ का प्रकाश करेगा? नहीं ॥ इस से हे मित्र इस दशा विशेष में शान्ति करना योग्य है ॥

आपतित जो सुख या दुःख तिसे सेवन करना चाहिये क्योंकि दुःख और सुख चक्र के सदृश परिवर्त्तन करते हैं ॥

अन्य । जैसे मण्डूक (मेंडक) निपान (जलाशय) को अंडज (पक्षी) पूर्ण सर की ओर आप ही आप आते हैं, तैसे ही सर्व संपदा विवश होकर उद्योगी पुरुष के पास आती है ॥

अन्य । उत्साह सम्पन्न, अदीर्घ सूत्र, क्रिया विधिज्ञ और व्यसन में असक्त शूर, कृतज्ञ और दृढ़ सौहृद मनुष्यों के निकट लक्ष्मी आप ही आप निवास निमित्त आती है । धीर पुरुष अर्थ के बिना भी बहुमान और उच्चपद को स्पर्श करता है, परन्तु कृपण अर्थ समायुक्त होकर भी परिभव पद को प्राप्त होता है जैसे स्वभाव से उद्भूत और गुण समूह को प्राप्त करने का है विषय जिस का ऐसी जो सिंह की द्युति उस को क्या कनक माला धारण करनेवाला श्वा (कुत्ता) पा सकता है अर्थात्

नहीं पाता ॥ मैं धनवान् हूं ऐसा तुझे मद है तो गत विभव में विषाद को क्यों प्राप्त होता है, क्योंकि मनुष्यों का पात और उत्पात कर निहित (ताडित) कंदुक (गेंद) की समान है ॥ और भी अभ्र की छाया, खल की प्रीति, नवीन शस्य, योषिता, यौवन, और धन ये सब किंचित् काल के उपभोग हैं अर्थात् थोड़े दिन रहते हैं । वृत्ति के निमित्त अति चेष्टा करना योग्य नहीं है, क्योंकि वह तो विधाता ही से निर्मित की गई है जैसे गर्भ से उत्पतित जो जन्तु तिस के लिये माता के स्तन प्रस्रवित होते हैं । अन्य ॥

जिस ने हंसों को शुक्ल, शुकों को हरित, और मयूरों को चित्रित, बनाया है वही तेरी वृत्ति को भी विधान करेगा ॥ हे मित्र और भी सत्पुरुषों का रहस्य सुनो ॥

जो उपार्जन करने में दुःख को विपत्ति में ताप को और संपत्ति में मोह उत्पन्न करते हैं ऐसे अर्थ (द्रव्य) सुखावह (सुखदायक) कैसे हैं । जिस को धर्मार्थ वित्त की इच्छा वा चेष्टा है उस से तो निरीहता ही श्रेष्ठ है, क्योंकि पंक के प्रक्षालन करने से उस का स्पर्श न करना ही वर है । अन्यच ॥

जैसे आमिष आकाश में पक्षियों से, भुवि में श्वापदों से और सलिल में मत्स्यों से भक्षण किया जाता है, तैसे द्रव्य वित्तवान् को भी सर्वत्र रहती है । और भी ॥

जैसे प्राण भृत को मृत्यु से नित्य भय है; तैसे राज, सलिल अग्नि और स्वजन से अर्थवान् को भी नित्य ही भय रहता है, बहुत क्लेश युक्त जो यह जन्म है तिस में इस से परे और दुःख क्या है? क्योंकि इस में न तो इच्छा की पूर्णता है, न इच्छा की निवृत्ति होती है॥

हे भाई और भी सुनो॥

प्रथम तो धन सुलभ नहीं, और लब्ध भये कृच्छ्रता (कष्ट) से रक्षा होती है और जो कभी लब्ध धन नाश हो गया तो जानो मृत्यु ही भई, इस हेतु इस की चिन्ता कभी न करनी। जब तृष्णा को त्याग किया, तो फिर न कोई धनवान् है न कोई दरिद्री है और जो हम ने तृष्णा को प्रसर (अवकाश) दिया, तो फिर दास्य (दासत्व) सिर पर चढ़ता है॥

और भी। जिस जिस वस्तु की वाञ्छा करता है उस से उस की इच्छा की प्रवृत्ति होती है, अर्थतः वही अर्थ प्राप्त है जिस वाञ्छा की निवृत्ति होती है॥

अब बहुत विश्रंभा लाप से (कथन) क्या लाभ आप मेरे साथ काल व्यतीत कीजिये। क्योंकि॥

महात्माओं का प्रणय (मित्रता) मरण पर्य्यन्त रहता है और उन का कोप तत्क्षण भंगुर है, और उन का परित्याग निःसंग होता है॥

यह सुन लघुपतनक काक बोला। हे मंथर तुम धन्य हो तुम सर्वदा आश्रय रूप होने के योग्य हो ॥

सन्त ही सत्पुरुषों की आपदा के उद्धार करने को समर्थ है, जैसे पङ्कमग्न गजों के निकालने को गज ही समर्थ होता है, और कोई नहीं होता ऐसा कहते हैं । कि

गुणज्ञ पुरुष गुणी पुरुष से आनन्द पाता है और अगुण शील से गुणी का परितोष नहीं होता है। जैसे अलि (भ्रमर) वन से कमल के निकट आता है, पर एक वास (साथ रहनेवाला) जो भेक सो कभी निकट नहीं जाता है ॥

और भी। इस भू में मानवों के मध्य वही एक श्लाघ्य है, वही उत्तम है, वही सत्पुरुष है, वही धन्य है, (कौन?) जिस के अर्थीवा शरणागत विभिन्न आशा होकर विमुख नहीं जाते हैं ॥

इस रीति से वे स्वेच्छाहार विहारकर संतुष्ट हो सुख से निवास करने लगे । पीछे किसी समय चित्राङ्ग नाम मृग किसी से त्रासित होकर वहां आय मिला । तब पश्चात् आनेवाला जो भय हेतु तिस को संभावना कर मंथर ने जल में प्रवेश किया मूषिक विवर में गया और काक उड्डीयमान हो वृक्षाग्र पर जा बैठा। पीछे लघुपतनक ने दूर तक निरूपण

कर जब कोई भय हेतु न देखा तब फिर सब कोई मिलकर बैठे, और मंथर ने कहा। हे मृग तुम कुशल से हो? अपनी इच्छानुसार उदक और आहार ग्रहण करो, और यहां अवस्थान करके (रहकर), इस बन को सनाथ करो; चित्राङ्ग बोला। मैं लुब्धक से त्रासित होकर तुम्हारी शरण आया हूं। कहा है कि

लोभ से वा भय से जो शरण आवे, और जो उस शरणागत को त्याग करे तो तहां मनीषी (पण्डित) कहते हैं कि उसे ब्रह्महत्या सम पातक होता है॥

इस से तुम्हारे साथ मित्रता की इच्छा रखता हूं। तब हिरण्यक कहने लगा, कि हमारे साथ तुम्हारी मित्रता अयत्न ही से निष्पन्न है। कहा है कि

चार प्रकार के मित्र होते हैं, एक औरस, दूसरा कृत सम्बन्ध, तीसरा वंश क्रमागत, और चौथा व्यसन से जिस की रक्षा की जावे॥

इस से अब तुम अपना गृह जानकर यहां ठहरो। यह सुन मृग आनन्द पूर्वक स्वेच्छाहारकर पानी पी, जल के निकट तरु की छाया में जाय बैठा। क्योंकि

कूपोदक, वटच्छाया, श्यामा स्त्री, और इष्टिका (ईंट)

गृह, ये सब शीतकाल में उष्ण और उष्णकाल में शीतल होते हैं ॥

मंथर बोला, हे सखे मृग तुम किस से ताड़ित भये, सो कहो । इस निर्जन बन में क्या कभी २ व्याध संचार करते हैं? । मृग ने कहा । एक कलिंग देश का रुक्माङ्गद नाम नृपति है, वह दिग्विजयक्रम से चन्द्रभागा नदी के तीर पर आकर कटक सहित उतरा है । वह प्रातःकाल इस कर्पूर सर के निकट आवेगा, यह मैं ने व्याधों के मुख से किंवदन्ती (अफुआ) सुना है, इस से यहां भी प्रातःकाल का अवस्थान भय हेतु जानकर जैसा करना हो वैसा कार्य्य करो । यह सुन कूर्म्म भय सहित बोला, मैं तो जलाशयान्तर को जाऊंगा । तब काक मृग ने भी कहा, हां ऐसा ही करो । तब हिरण्यक हंसकर बोला । जब जलाशय प्राप्त होगा तब तो मंथर की कुशल ही है पर स्थल में किस रीति से गमन होगा सो कहो ॥ क्योंकि

जल जन्तु का बल जल में, और दुर्ग निवासियों का बल दुर्ग में, पदचारी का बल स्वभूमि में, और राजा को सैन्य (सेना) का बल होता है ॥

सखे लघुपतनक इस उपदेश से वैसा ही होगा जैसे एक वणिक् पुत्र अपने को बद्ध और निज स्त्री के

स्तन कुड्मल को पीड़ित देखकर दुखी भया, तैसे ही तुम भी पीड़ित होगे ॥

वे बोले, यह कैसे भया ? तब हिरण्यक कहने लगा। कान्य कुब्ज देश में एक बीर सेन नाम राजा है। उस ने बीरपुर नाम नगर में तुंगबल नाम राज पुत्र को युवराज किया। वह महा धनवान और तरुण था, एक समय स्व-नगर में भ्रमण करते २ अति प्रौढयौवना लावण्यवती नाम एक वणिक्पुत्रवधू को देखा। तब स्वहर्म्य में जा स्मर से आकुलित मति होकर उस स्त्री के निमित्त एक दूती भेजी। क्योंकि

तभी तक सत् मार्ग में पुरुष रहते हैं, और तभी तक इन्द्रियों को वशी भूत रखते हैं तभी तक लज्जा को भी धारण करते हैं, और तभी तक बिनय का भी आलंबन धरते हैं, जब तक कि परिणत (झुके हुए) भ्रूचाप से आकृष्ट मुक्त श्रवणपथगत नील पक्ष्म जो लीलावती के दृष्टिबाण सो हृदय में नहीं पतन होते हैं ॥

वह लावण्यवती भी उस युवराज के अवलोकन क्षण से स्मरशर के प्रहार से जर्ज्जरितहृदय होय उस में एक चित्त हो गई थी, ऐसा कहा है। असत्य साहस माया मात्सर्य्य और अति लुब्धता ॥

निर्गुणत्व और अशौचत्व ये स्त्री के स्वभावज दोष हैं ॥

पीछे दूती के वचन सुनकर लावण्यवती बोली । मैं पतिव्रता हूं, पर पुरुष का स्पर्श मात्र भी नहीं करती हूं ॥ क्योंकि

भार्य्या वही कहाती है, जो गृह कार्य्य विषे दक्ष होवे प्रजावती होय पतिप्राणा और पतिव्रता होवे । कोकिला का स्वरूप स्वर है, नारी का स्वरूप पतिव्रता है, कुरूपों का रूप विद्या और तपस्वियों का स्वरूप क्षमा हैं । जिस का भर्त्ता तोषित नहीं होता वह भार्य्या नहीं, क्योंकि अग्नि की साक्षी से मर्य्याद कर्त्ता जो पति वही स्त्री का शरण स्थान है ॥

इस से मेरा प्राणेश्वर जो जो आज्ञा देता है, उसी का मैं आचरण करती हूं दूती ने कहा सत्य है । तब लावण्यवती ने कहा यह तू सत्य ही जान । तब दूती ने वहां से जाकर तुंगबल के आगे सम्पूर्ण निवेदन किया । यह सुन तुंगबल ने कहा । हे स्वामिन् उस को लाकर समर्पण करना उचित है, सो यह किस रीति से हो सकेगा ? तब कुटनी बोली । उपाय करिये । ऐसा कहा है कि

उपाय से जो वस्तु शक्य है, सो पराक्रम से शक्य नहीं है, जैसे एक हस्ती पंक वर्त्म से जाते हुए शृगाल से मारा गया ॥

राज पुत्र ने पूछा यह कैसे भया ? वह दूती बोली ब्रह्मारण्य में कर्पूर तिलक नाम एक हस्ती रहा, उस को देखकर सब शृगालों ने मिल चिन्तन किया। जो यह हस्ती किसी उपाय से मारा जाय, तो इस की देह से हम लोगों का चार मास तक स्वेच्छा भोजन होय। तब एक वृद्ध शृगाल ने यह प्रतिज्ञा की, कि मैं बुद्धि प्रभाव से इस का मरण साधन करूंगा॥

इस के पीछे वह वञ्चक कर्पूर तिलक के समीप आय साष्टांग प्रणामकर बोला, हे देव दृष्टि प्रसाद करिये। हस्ती बोला, तुम कौन हो? और कहां से आये हो। वह बोला। मैं जम्बुक हूं, और सम्पूर्ण वनवासी पशुओं ने मिलकर मुझे आप के निकट भेजा है, (और कहा है कि) राजा के बिना अवस्थान करना युक्त नहीं है, इस से इस अटवी राज्य में अभिषेक करने के लिये आप को सर्वस्वामि गुणो पेत निरूपित किया है। क्योंकि

कुलाचार जनाचार से शुद्ध प्रतापवान् धार्मिक और नीतिकुशल ऐसा स्वामी भूपर योजना करने के योग्य होता है। और भी देखो। कि पहिले राजा का अनुसन्धान करना पीछे भार्या का, तब धन का, क्यों-

कि इस लोक में राजा के बिना भार्या और धन कहां रह सकता है ॥

और भी। पृथ्वीपति भूतों का (प्राणियों का,) पर्जन्य की भांति आधार है। पर्जन्य की विकलता में तो प्राणी जीवते भी हैं, पर भूपति के बिना नहीं जी सकते। बहुधा दण्ड योग से नियतविषयवर्त्ती पुरुष होता है, क्योंकि साधु वृत्त इस परवश जगत में बहुत दुर्लभ है। जैसे क्षय विकल व्याधित अधन जो पति तिस को कुल नारी दण्ड के भय से स्वीकार करती है ॥

अब जिस में लग्नबेला चलायमान न होवे, ऐसा कर आप सत्वर चलिये। ऐसा कह उठकर चला। तब यह हस्ती भी राज्य के लोभ से आकृष्ट होय शृगाल जिस मार्ग से जाता था उसी मार्ग के पीछे २ दौड़ता भया चला, और महा पंक में निमग्न भया, तब हस्ती बोला। सखे शृगाल मैं तो महा पंक में निमग्न भया, अब क्या करना योग्य है? शृगाल हंसकर बोला। हे देव मेरी पुच्छ के अग्र भाग पकड़ लो। जिस के वचन का तुम ने विश्वास किया उसी का फल है। सो कहा है।

जब सत्संग से रहित होगे, तब सज्जन गोष्ठी में अवश्य पतित होगे ।

पीछे महापंकनिमग्न हस्ती शृगालों से भक्षण किया गया । इस से मैं कहती हूं कि जो उपाय से होता है, सो बल से नहीं होता । पीछे उस कुटिनी के उपदेश से उस चारुदत्त नाम वणिक् पुत्र को राजपुत्र ने सेवक रक्खा, और सब विश्वास कार्य्य में उस का नियोग किया । एक समय स्नान और अनुलेपन और कनक के अलंकार धारण करके कहा । मुझे एक मास पर्य्यन्त गौरी व्रत कर्त्तव्य है । उस के लिये प्रति रात्र एक कुलवती कन्या वा युवती लाकर समर्पण कर । और वह मुझ से यथोचित्त बिधि से पूजनीय होगी । पश्चात् वह चारुदत्त नित्य प्रति जिस प्रकार से उस ने कहा था उसी रीति से तरुणी लाकर समर्पण करता । फिर आप प्रछन्न होकर निरूपण करता, कि यह क्या करता है ? । उस तुंगवल में देखा कि वह युवती को दूर ही से वस्त्र अलंकार गंध और चन्दन से पूजनकर एक रक्षक देकर भेज देता है । पीछे वणिक् पुत्र इस दृष्टोपजात बिश्वास से और लोभाक्रुष्ट मन से अपनी स्त्री को लाकर समर्पित किया । वह तुगवल हृदय प्रिया जो लावण्यवती उस को पहचान ससंभ्रम उठ-

कर निर्दयता से उसे आलिंगन कर आनन्द से उन्मीलित लोचन हो निज पर्य्यंक पर जा उस के साथ विलास किया। इस चरित्र को देख चित्र लिखित सा हो निज कर्त्तव्यता से मूढ जो वणिक् पुत्र सो अत्यंन्त विषाद को प्राप्त भया॥ इसो से मैं ने स्वयं वीच इत्यादि वाक्य कहे, वही अवस्था तुम्हारी भी होगी। परन्तु उस के बचन को न मान मंथर बड़े भय से इस जलाशय को छोड़कर चला। तब वे हिरण्यक आदि भी उस के पीछे २ चले। पीछे स्थल में जाते भये किसी व्याध ने बन में फिरते २ उस मंथर को देखा, तो उसे ग्रहण कर उठाय धनुष् में बांध क्षुत्पिपासाकुल हो अपने घर की ओर को चला। तब वे मृग वायस मूषिक् भी अति विषाद को प्राप्त हो उस व्याध के पीछे २ चले। तहां हिरण्यक विलाप करने लगा॥

मैं एक दुःखसागर के पार हुआ ही, नहीं तब तक द्वितीय दुःख आकर उपस्थित भया सत्य है, छिद्र में बहुत अनर्थ होते हैं॥

स्वभावज मित्र भाग्य से प्राप्त होता है, और वह अकृत्रिम सौहार्द आपत् में भी नहीं छूटता है॥

न माता में, न दारा में, न सौदर्य्य में, न आत्मज में,

पुरुष का तादृश विश्वास होता है, जैसा स्वभावज
मित्र में रहता है ॥

ऐसा वारंवार चिन्तन कर कहा, अहो यह मेरा दुर्भाग्य है। क्योंकि। स्वकर्म्म सन्ताप से विचेष्टित जो कालान्तरावृत्ति शुभ और अशुभ तिन को मैं ने यहां ही जन्मान्तर की भांति दशान्तर में देखे॥ अथवा।

काया के सन्निहित अपाय है, सपदा के निकट आपद
का पद है, समागम अपगम सहित है, और सर्व उत्पादित
वस्तु का भङ्गुर (नाश) है। फिर हंसकर बोला ॥

शोक का अराति, भयत्राण, प्रीति और विश्रंभ का भा-
जन ऐसा जो ये द्वयक्षर रूपी मित्र रत्न है, सो किस ने
बनाया है? नयनों को प्रीति रसायन चित्त को आनन्द
कारक, और सुख दुःख का पात्र जो मित्र है सो मिलना
दुर्लभ है, और और जो समृद्धि समय में द्रव्य के अभि-
लाष में आकुल हैं, अर्थात् जो द्रव्य ही के अभिलाषी
हैं ऐसे मित्र सर्वत्र मिलते हैं, और उन के लिये विपत्
जो है, सोई तत्वनिकषग्रावा अर्थात् कसौटी है ॥

इस रीति से बहुत सा विलाप करके, हिरण्यक ने चित्रांग और लघुपतनक से कहा। जब तक यह व्याध बन से बाहिर

निकले तब तक मंथर के छुड़ाने का उपाय करो । तब उन दोनों ने कहा । आप सत्वर कार्य्य कहिये, सो करें । हिरण्यक ने कहा । चित्रांग तुम जल के समीप जाकर, निज आत्मा को मृतवत् दिखाओ, और काक उस शरीर पर बैठकर निज चञ्चु से कुछ लिखे । निश्चय है, कि वह लुब्धक कच्छप को छोड़कर मृग मांस के अर्थ सत्वर जायगा । तब मैं मंथर के बंधन छेदन करूंगा ॥ तब चित्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र जाकर, जैसे हिरण्यक ने कहा, वैसे ही किया । फिर वह व्याध श्रान्त होय पानी पीकर तरु के नीचे बैठा, और मृग को मृतवत् देखा । तब कर्त्तरिका (कैंची) लेकर, । प्रहृष्ट मन से मृग के निकट चला ॥ इस अन्तर में हिरण्यक ने आकर बंधन छेदन किये । और छिन्न बंधन कच्छप ने सत्वर जलाशय में प्रवेश किया । वह मृग व्याध को निकट आया जान उठकर भागा । प्रत्यावर्तन करके लुब्धक जब तरु के नीचे आया, तब कूर्म को न देख चिन्तन करने लगा । कि मेरे असमीक्ष्यकारी (ईश्वर) ने उचित ही किया । क्योंकि ॥

जो ध्रुव को छोड़कर अध्रुव का सेवन करता है, उस की ध्रुव वस्तु नाश होती है, और अध्रुव तो नष्ट होता ही है ।

पीछे यह व्याध स्वकर्म्म वश से निराश होकर, कटक को गया ।

दुर्ब्बल वा बलवान मित्र अवश्य कर्त्तव्य है, क्योंकि देखो

बद्ध जो कूर्म्मपति सो मूषिक से विमोचित भया ॥

मंथरादि संपूर्ण मित्र मुक्तापद होय स्वस्थान को गये, और यथासुख से रहे । यह कथा श्रवण कर, राजपुत्रों ने आनन्द पूर्वक कहा । हम यह कथा श्रवण कर बहुत सुखी भये, और हमारी सिद्धि भई । तब विष्णु शर्म्मा बोला । इस से तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण भई, और । (इस कथा के श्रवण से) इतना फल होवे कि ॥

सज्जनों को मित्र की प्राप्ति होय, जन पद को लक्ष्मी मिले, और स्वधर्म्मस्थित जो भूपाल सो वसुधा का पालन करें, सुकृतियों की नीति न वोढ़ा स्त्री की भांति तुम्हारे मन को संतुष्ट करे, और भगवान चंद्रार्द्धचूड़ामणि जन का कल्याण करें ॥

यह अनुवाद नंदन नगर की छपी हुई पुस्तक के अनुसार हुआ है, इसी से कलकत्ते की पुस्तक से कहीं २ पाठान्तर और श्लोकान्तर है ॥

इति श्री पण्डित बदरीलाल कृते हितोपदेशाऽनुवादे मित्र लाभो नाम प्रथमकथा समाप्ता ॥ शुभम् ॥

HINDI VERSION

OF

THE HITOPADES'A:

BOOK I.;

RETAINING AS MANY AS POSSIBLE OF THE ORIGINAL SANSKRIT EXPRESSIONS.

PRINTED FOR THE USE OF SANSKRIT CLASSES IN THE SCHOOLS AND COLLEGES OF INDIA,

By Order of Govt. N. W. P.

MIRZAPORE:

ORPHAN SCHOOL PRESS; R. C. MATHER, SUPERINTENDENT.

1851.

ADVERTISEMENT.

The special design of this Hindí version of a part of the Sanskrit *Hitopades'a* will be learnt from the following extract from the General Report on Public Instruction in the North West Provinces for 1847-8.

"The plan of the translation is this, that every word (noun, adjective, or participle) which it is allowable to transfer into the Hindí, shall be so transferred, instead of a more common synonym's being substituted for it. The book which should thus bear to the colloquial style the relation that the *Bágh o Bahár* or the *Ikhwánussafá* bears to the more familiar Urdú, will be read in the Hindí class, and the meaning of all the words will be learned as usual from the mouth of the pandit. The pupil, who may at the same time be making himself acquainted with the broader outlines of Sanskrit grammar (by means of aids which I contemplate supplying with a special view to this introductory course) will then take up the Sanskrit original with the advantage of a previous acquaintance with nearly every word in it;—so that his undistracted attention may be bestowed upon the inflection which constitute almost the only difference between the original and the version with which he shall have been rendered familiar."

If the version is found to answer this purpose, a considerable width of difference between its style and the more familiar style of Hindí works will constitute no considerable ground of objection to it. A smoother style might have been not incompatible with the end in view; but, as a first attempt, in a somewhat novel line, its execution may be thought not un-creditable to Pandit Badarí Lála, to whom the task of preparing the version was mainly confided.

J. R. B.

Benares College,
24th April, 1851.

* ॥ श्रीः ॥ *

श्रीयुत कृपावान् धीमान् परमसुजान सकल गुणनिधान परम-उजागर दयासागर अति नागर वाराणसी पाठशालास्थ श्रीयुत डाक्तर बेलण्टाइन प्रधानाऽध्यक्ष की आज्ञाऽनुसार तच्छालास्थ भाषा पाठक पण्डित बद्रीलाल सहस्र अवदीच अर्गलपुर बासी नें संस्कृत शब्दाऽनुयायी भाषा में संस्कृत पठनाऽभिलाषी विद्यार्थियों के निमित्त संस्कृत हितोपदेश का अनुवाद किया ॥

इस रीति की भाषा लिखवानें से हमारे प्रधानाऽधिपति का यह आशय है जो भाषा में अधिक संस्कृत शब्दों का प्रचार होनें से विद्यार्थियों को देववाणी के जाननें में बिशेष परिश्रम न होगा अर्थात् संस्कृत शब्द मिश्रित भाषा के पढ़नें से सहज में अनेक शब्दों का ज्ञान होजायगा ॥ और जितना श्रम शब्दार्थ ज्ञान में अब होता है उतना फिर न होगा और भाषा भी सब को उत्तम होगी और शीघ्र ही देव वाणी की वृद्धि होगी सत्य है जिस वार्त्ता का अधिक व्यवहार होता है तौ उस के जाननें में किसी को बिशेष श्रम नहीं करना पड़ता है ॥ सं. १८४८ ई० १९०५ हिं ॥

* । श्री परमेश्वरो विजयते । *

॥ हितोपदेश का अनुवाद ॥

* । प्रस्तार । *

---

* ॥ जो यह हितोपदेश श्रुत होय तो संस्कृतोक्ति में पाटव सर्व्वत्र वाक्योंका वैचित्र्य और नीति विद्या प्राप्त होवे ॥ प्राज्ञ को चाहिए कि अपने को अजर और अमर समझ कर विद्या और अर्थ का चिंतन करे और जैसे किसी का केश मृत्यु से गृहीत है वैसा अपने को जान कर धर्म्म का आचरण करे। सर्व द्रव्य में विद्याही को सर्वदा अहार्यत्व, अनर्घत्व, और अक्षयत्व के हेतु से अनुत्तम द्रव्य कहा है। विद्या ही नीच मनुष्य और दुर्धर्ष नृप का सरित् समुद्र सम संगम करादेती है अतः पर भाग्योदय जानिये। विद्या विनय देती है, विनय से पात्रता प्राप्त होती है, पात्रता से धन, धन से धर्म्म, उससे सुख प्राप्त होता है। प्रतिपत्ति हेतु दो विद्या हैं। एक शस्त्र द्वितीय शास्त्र विद्या, आद्या वृद्धत्व में हास्य का हेतु होती है औ द्वितीया सदा आदृत होती है। जो नवीन भाजन लग्न है उसका संस्कार अन्यथा

नहीं इस निमित्त कथा के छल से बालकों के अर्थ नीति का कथन कर्त्ता हूं। मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह, और सन्धि इन् कथाओं को पंचतन्त्र तथा अन्य ग्रंथों से आकर्षण कर लिखता हूं ॥

भागीरथी के तीर पर पाटलि पुत्र नाम नगर है वहां सर्वस्वामि गुणोपेत सुदर्शन नाम नरपति रहता था, उस भूपति नें एक समय में पठ्यमान श्लोक द्वय श्रवण किया उन् का आशय यह है ।

अनेक संशयों का छेदक, और परोक्षार्थ दर्शक शास्त्र सब का लोचन है जिस् को यह नहीं वही अंध है। यौवन, धन, सम्पत्ति, प्रभुत्व, अविवेकता, ये प्रत्येक अनर्थ के हेतु हैं और जहां यह चतुष्टय होंय तहां क्या जानिए क्या होय। यह आकर्ण कर, आत्मपुत्रों को अनधिगत शास्त्र, और नित्य कुमार्गगामी जान शास्त्राऽनुष्ठान से उद्विग्न मन हो वह राजा चिन्तन करनें लगा ।

उस् जात पुत्र से क्या अर्थ जो विद्यावान् और धार्मिक नहीं ॥
कांणे चक्षु से क्या लाभ किंतु वह केवल पीड़ा जनक है ॥
अजात, मृत, मूर्ख पुत्रों में आद्य दो वर हैं। और अंतिम नही ।
आद्य सकृत् दुःख कारक हैं पर अन्तिम पद २ में दुःख जनक है ॥

वही जात है जिस् के जात होंने से वंश समुन्नति को प्राप्त होवे यों तो परिवर्त्ती संसार में मृत होकर कौन नहीं जात होता ॥

गुणि गण की गणना के आरंभ में जिस् के नामोच्चारण में स-

संभ्रम भी कठिनो न पतन करे तिस से जो अंबा सुतिनी (अर्थात पुत्रवती) कहावे तौ कहो वंध्या कीदृशी होती है। जिस् का यश दान तप शौर्य्य विद्या और अर्थलाभ में प्रथित नहीं भया वुह माता का उच्चार (अर्थात्) मल है। एक गुणी पुत्र वर है शत मूर्ख श्रेष्ठ नहीं यथा एक चंद्र तम का हनन कर्त्ता है तारागण नहीं। जिसूनें पुण्यतीर्थों में सुदुष्कर तप किया है तिस् का पुत्र वश्य सम्हज्ञ धार्मिक और सुधी होता है॥ तथाच उक्तम्। अर्थागम, नित्य अरोगिता, प्रिया भार्य्या, पुनः प्रिय वादिनी, वश्यपुत्र, अर्थकरी विद्या, ये छ वस्तु लोक में सुखावह हैं। कुशूल पूरणाढक सम बहु पुत्रों से कौन धन्य है कुलालम्बी एक वर है जिस् से पिता विश्रुति को प्राप्त होय। ऋण कर्त्ता पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती भार्या। और अपण्डित पुत्र, इन् सब को शत्रु जानिये। अनभ्यसित विद्या, अजीर्ण भोजन, दरिद्री की सभा, और वृद्ध को तरुणी, विष समान हैं। सब स्थान ये प्रसूत गुणवान् नर पूजनीय है जैसे विशुद्ध वंशधनु निर्गुण होने से कुछ काम का नहीं होता। तिस् से किसी रीति से अपने पुत्रों को गुणवन्त करूं। आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ये पशु और नर में समान हैं इस् में विशेष कर्के धर्म्म ही अधिक है तौ धर्म्महीन नर भी पशु समान हैं॥ धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जिस् के इन् में से एक भी विद्यमान नहीं तिस्

का जन्म अजागलस्तन इव निरर्थक है। यथोच्यते। आयु, कर्म्म, वित्त, विद्या, और निधनता, ये पांच देही को गर्भ से ही सृज्यमान होते हैं। अवश्य भावी भाव महत्पुरुषों को भी होता है यथा नीलकण्ठ को नग्नत्व और हरि को महाऽहिशयन। जो अभावी सो भावी नहीं और जो भावी सो अभावी नहीं यह चिन्ता विषघ्न अगद क्यों न पीवे। ये कार्य्याऽक्षम किसी नरके आलस्य वचन हैं। यथा एक चक्र से रथ की गति नहीं तैसे पुरुषकार विन दैव को सिद्धि नहीं। पूर्व जन्मकृत कर्म्म दैव है तस्मात् पुरुषकार करके अतन्द्रित होय यत्न करना अवश्य है। अन्यच्च। उद्योगी पुरुषसिंह को लक्ष्मी उपेत होती है दैव से देय है ऐसा कापुरुष कहते हैं। दैव को निहत्य आत्म शक्त्यनुसार पुरुषार्थ कर जो यत्न किये सिद्धि न होय तो कुछ दोष नहीं है॥ जैसे मृत्पिण्ड से कर्त्ता जो इच्छा करता है सो बनाता है। ऐसे मानव भी आत्मकृत कर्म्म का प्रतिपादन कर्त्ता है॥ उद्यम से कार्य्य की सिद्धि है मनोरथ से नहीं यथा सुप्त सिंह के मुख में मृग स्वयं नहीं प्रवेश करते हैं॥

वुह माता शत्रु और पिता वैरी जिस ने बालक को न पढ़ाया। और वह सभा में शोभा नहीं पाता जैसे हंसों में बक॥ रूप यौवन सम्पन्न और विशाल कुल संभव भी होंय पर विद्याहीन निर्गंध पलाशपुष्पवत् शोभा नहीं पाते। जिस ने कभी पु-

स्तक में न पढ़ा ग्रैार न गुरु के निकट तौ वह स्त्री के जारज गर्भ सम सभा में शोभता नहीं। यह चिन्तन कर राजा नें पंडितों की सभा की, ग्रैार कहा । भो पण्डितो मेरे वचन श्रवण करो। कोई ऐसा विद्वान् है जो नित्य न्मार्गगामी ग्रैार ग्रनधिगतशास्त्र मेरे पुत्रों का इसकाल नीति शास्त्र के उपदेश से नवीन जन्म करनें में समर्थ होय ? काच कांचन के संसर्ग से मारकती द्युतिको धारण करता है तैसे सत् सन्निधान से मूर्ख प्रवीणता को प्राप्त होता है ॥ हे तात हीन समागम से मति हीनता को सम के साथ समता को ग्रै विशिष्ट के संग से विशिष्टता को प्राप्त होती है ॥

उस् काल सकल नीतिशास्त्रज्ञ विष्णुशर्म्मा नामा पण्डित वृहस्पति के सदृश बोला । हे देव महाकुल संभूत इन् राजपुत्रों को नीति सिक्षा के निमित्त मैं समर्थ हूं । यतः ॥ अद्रव्य निहित कोई क्रिया फलवती नहीं होती जैसे शत व्यापार से भी शुकवत् बक नहीं पढ़ता । इस् गोच में तो निर्गुण अपत्य नहीं होते जैसे पद्मराग की ग्राकर में काचमणि का जन्म कहां।

अतः मैं षण्मासाऽऽभ्यन्तर में तुमारे पुत्रों को नीति शास्त्राऽभिज्ञ करूंगा । राजा नें पुनः सविनय कहा ।

कीट भी सुमन प्रसंग से सत्पुरुषों के शिर पर आरोहण कर्त्ता है जैसे महान् पुरुषों से सुप्रतिष्ठित अश्म देवत्व को प्राप्त होता

है । अन्य । यथा उदयगिरि में सूर्य्य की सन्निकर्षता से संपूर्ण द्रव्य दीप्यमान होते हैं तैसे सत् सन्निधान से हीनवर्ण भी दीप्यमान होता है ॥

तिस् से मेरे पुत्रों के नीति शास्त्र के उपदेशार्थ आपही योग्य हैं ऐसा कहकर विष्णुशर्म्मा को बहुमान पूर्वक निज पुत्रों को समर्पित किया । पश्चात् प्रासाद पृष्ठस्थ और सुखोपविष्ट राजपुत्रों के आगे प्रस्ताव क्रम से वह पण्डित बोला । हे महाराज ।

काव्य शास्त्र विनोद से धीमानों का काल व्यतीत होता है और मूर्ख व्यसन निद्रा कलह में खोता है ।

इस् से आप के विनोदार्थ काक कूर्म्मादिक की विचित्र कथा वर्णन करता हूं । राज पुत्रों नें कहा कहो । विष्णुशर्म्मा बोला आप श्रवण कीजिए । संप्रति मित्रलाभ कथा को कहता हूं जिस् का आद्य श्लोकाशय यह है ॥ इति० ॥

---

* ॥ अथ कथा का आरम्भ ॥ *

। हितोपदेश का अनुवाद ।

* ॥ प्रथम भाग मित्रलाभ ॥ *

असाधन वित्तहीन बुद्धिमान् सुहृत्तम होंय तौ आशु कार्य्य सिद्धि करैं यथा काक कूर्म्म मृग आखुके भये ॥

राजपुत्र बोले यह कैसे भया । वह बोला। गोदावरी तीर पर एक विशाल शाल्मली तरु है । तहां नानादिक्देशागत पक्षी रात्रिसमय निवास करते हैं। पश्चात् कदाचित् रात्र्यवसान में भगवान् कुमुदिनीनायक चंद्र अस्ताचल चूडाऽवलम्बी भये तब लघुपतनक नाम वायस प्रबुद्ध भया, और कृतान्तमिव अटन करते व्याध को देखा। तिसे अवलोकन कर चिन्ता करनें लगा। आज प्रात ही अनिष्ट दर्शन भया है। न जानिये क्या अनभिमत दृष्टि पड़ेगा॥

ऐसे कह अनुसरण क्रम कर्के व्याकुल होय चलितभया क्योंकि । सहस्र शोकस्थान और शत भयस्थान दिवस २ मूढ में आवेश करते हैं पंडित में नहीं ॥

॥ और विषयियों को यह अवश्य कर्त्तव्य है ।

प्रथम उत्थान कर्के उपस्थित जो महत् भय उस को बिचारे । मरण व्याधि शोक में से आज क्या निपतन होगा ॥

पश्चात् उस व्याध ने तण्डुलकणों को विकीर्ण कर उन के ऊपर जा-

ल को विस्तीर्ण कर आप प्रच्छन्न होय स्थित भया। इस काल में चित्रग्रीव नाम कपोतराज सपरिवार वियत् में उड़ता २ तण्डुल कणों को अवलोकन किया। तदनन्तर कपोत राज नें तण्डुलकणलुब्ध कपोतों के प्रति कहा। यहां निर्जन बन में तण्डुल कणों का संभव कहां? तन्निरूपण करो। मैं भद्र नहीं देखता प्राय इन तण्डुलकण लोभ से हमारी भी वह गति होगी यथा कंकण लोभ से सुदुस्तर पंक में मग्न होय वृद्ध व्याघ्र से एक पथिक निपातन किया गया। यह श्रवण कर कपोतों नें कहा यह कैसे भया। उसने कहा। मैं नें एक समय दक्षिणारण्य में विचिरते २ देखा। एक वृद्ध व्याघ्र स्नान कर कुशहस्त में ले सर तीरपर कहता था। भो पान्थ ये सुवर्ण कंकण लो तदनन्तर लोभाकृष्ट किसी पान्थ से आलोचित भया ब्राह्मण बोला। भाग्य से ऐसा संभव होता है किन्तु इस आत्मसन्देह में प्रवृत्ति विधेय नहीं है। यथा। अनिष्ट से इष्ट लाभ में भी शुभगति नहीं प्राप्त होती जहां अमृत में विष का संसर्ग है॥ तहां निश्चय मृत्यु है॥ किन्तु सर्वच अर्थार्जन में संदेह पूर्वक प्रवृत्ति है। तथाचोक्तम्।

संशय पर आरोहण किये विना नर भद्र भी नहीं देखता पुनः संशय पर आरोहण किये से जो जीवित रहे तो भद्र देखे। सोनिरूपण करता हूं। तब पान्थ ने प्रकाशता से कहा।

तुम्हारा कंकण कहां है ? व्याघ्र ने हस्त प्रसारण कर दिखाया । तब पान्थ बोला । तुम मारात्मक हो तुम में विश्वास कैसे करें ? व्याघ्र बोला । सुन रे पान्थ मैं प्राक् यौवन दशा में अति दुर्वृत्ती था और अनेक गो ब्राह्मण के बध से मेरे पुत्र दारा मृत भये और वंश हीन भया तब केनचित् धार्मिक ब्राह्मण से मैं आदिष्ट भया जो दान धर्मादिक का आचरण करो तदुपदेश से मैं इस काल में स्नान शील और दाता और अब गलित नख दंत भया कहो विश्वास भूमि कैसे नहीं हूं । लिखा है ।

इज्य, अध्ययन, दान, तप, सत्य धृति, क्षमा, और अलोभ, ये अष्ट प्रकार के धर्म्म मार्ग है ; तहां पूर्व के चतुर्वर्ग दंभार्थ भी सेवन किये जाते हैं । और उत्तर के चतुर्वर्ग महात्माओं में रहते हैं । मुझे यहां पर्य्यन्त लोभविरह है जो स्वहस्तस्थ कंकण के देने की इच्छा करता हूं ॥

तथापि व्याघ्र मनुष्य को भक्षण करता है यह लोकाऽप वाद दुर्निवार है । लोक गताऽनुगतिक हैं क्योंकि धर्मोपदेशिनी कुट्टनी का इतना प्रमाण करें जैसा गोघ्न द्विज की माने । सुन मैं नें भी धर्म्म शास्त्राऽध्ययन किया है ।

यथा निज आत्माऽभीष्ट प्राण है तथा अन्यप्राणियों के भी जानिये इस हेतु साधुजन आत्मौपम्य से भूत में दया करते हैं ॥ अन्य ।

प्रत्याख्यान, दान, सुख दुःख, और प्रिय अप्रिय में पुरुष आत्मौपम्य से प्रमाणाधिगमन करे ॥ पर दारा को मातृवत् परद्रव्य को लोष्टवत् और सर्व भूत में आत्मवत् दृष्टि करे उसे पंडित जानिये ॥

तुम अतीव दुर्गत हो तिस से तुम्हें देने को सयत्न हूं तथाचोक्तम् ॥ हे कौन्तेय दरिद्रों का भरणपोषण कर औ ऐश्वर्य्यवान् को धन मत दे क्योंकि व्याधित की औषधपथ्य है नीरुज को औषध से क्या लाभ ॥ दातव्य दान अनुपकारी के अर्थ दीजे। देश काल पात्र में जो दान है सो सात्विक दान है ॥ तिस से तुम सर में स्नान कर सुवर्ण कंकण को लो। तदनन्तर इस ब्राह्मण ने तद्वचन प्रतीत कर लोभ से स्नान निमित्त सर में प्रवेश किया, त्यों ही महा पंक में निमग्न और पलायन करने को असमर्थ भया। तिसे पंक में पतित देख व्याघ्र बोला, अहह! तुम क्या महा पंक में निमग्न भये? अब मैं तुम्हारा उत्थापन करता हूं इतना कह शनैः शनैः समीप जाय उस व्याघ्र नें धरा; तब वह पान्थ चिन्तन करनें लगा। दुरात्माओं का धर्म्मशास्त्र पठन करना वा वेदाध्ययन करना कुछ सार्थक नहीं। क्योंकि स्वभाव सर्वोपर है यथा गोपय प्रकृति ही सेमधुर ॥ अब अजितेन्द्रियचित्त वालों की क्रिया हस्ति स्नान समान है यथा दुर्भगाभरण प्राय बिना क्रिया ज्ञान भार है ॥

मैं ने उत्तम न किया जो मारात्मक में विश्वास किया ॥ तथा चोक्तम् ॥ शृंगीयों का नदी का नखो का शस्त्रपाणिका विश्वास नहीं कर्त्तव्य है तैसे स्त्री और राजकुल का भी विश्वास न करिये ॥ स्वभाव से सब की परीक्षा होती है इतर गुण से नहीं क्योंकि सर्वगुणों को उल्लंघन कर स्वभाव मूर्द्ध पर स्थित रहता है ॥ गगन विहारी, कल्मषध्वंसकारी, दश शत करधारी, और ज्योतिषां मध्यचारी, जो विधु, सो भी विधि योग से राहु से ग्रसित होता है इस से ललाट लिखित प्रोञ्झना करनें को कोई समर्थ नहीं यह तौ ऐसा चिन्तन करता ही रहा और व्याघ्र इसे व्यापादित कर के खा गया ॥ इसी से मैं ने कंकण स्यतुलोभेन इत्यादिवाक्य कहे ॥ इस कारण अविचारित कर्म्म कदापि न करिये ॥ कहा है ?

सुजीर्ण अन्न, सुविचक्षण सुत, सुशासिता स्त्री, सुसेवित नृपति, सुचिन्त्यउक्त, सुविचार्य्यकृत सुदीर्घ काल में भी विक्रिया को नहीं प्राप्त होता है ॥

ये वचन श्रवण कर किसी कपोत नें सदर्प कहा आं यह क्या उच्चारण करते हो ?

आपत् काल उपस्थित होय तब वृद्ध के वचन ग्राह्य हैं सर्वत्र ऐसे विचार से भोजन में भी अप्रवृत्ति होती है । इस भूतल

विषै अन्न पान संपूर्ण शंका से आपन्न हैं। तौ कहां प्रवृत्ति करें पुनः जीवन कैसे होय ॥

ईर्षी—घृणी, असन्तुष्ट, क्रोधी, नित्यशंकित, पर भाग्योप जीवी, ये षट् दुःख भागी हैं॥ यह श्रवण कर संपूर्ण कपोत तहां उपविष्ट भये। सुमहत्, शास्त्राऽध्ययन कर्त्ता, बहुश्रुत सर्व संशय छेता भी लोभ मोहित होकर क्लेश सहन कर्त्ता है॥ लोभ से क्रोध, काम, मोह प्रभव होते हैं और लोभ ही पाप कारण है॥

अनन्तर सर्व पक्षी जाल निबद्ध भये। तब जिस के वचन प्रामाण्य से अवलंबित भये थे उस का सब तिरस्कार करनें लगे॥ लिखा है। गण के अग्र न चलिये, कार्य्य सिद्धि होय तौ फल समान यदि कार्य्य की विपत्ति होय तौ मुखर का हनन किया जाय॥ इन्द्रियों का असंयम आपदा का मार्ग है औ तज्जय संपदा मार्ग है जिसे जो इष्ट होय उसी में जाय॥ तिस का तिरस्कार श्रवण कर चित्रग्रीव बोला। यह इस का दोष नहीं है॥

आपदामापतन्तीनां हितः अपि हेतुतां याति यथा वत्सस्य वन्धने मातृजंघा स्तम्भी भवति। जो विपन्नों के आपदुद्धरण करनें में समर्थ होय सो बन्धु और भीत से परित्राण इच्छुक वस्तूपालम्भ पण्डित नहीं होता॥ विपत्काल में विस्मय ही का

पुरुष का लक्षण है इस से अब धैर्य्य, उपालंभ कर प्रतिकार चिंतन करो ॥ यथा ॥ विपत् में धैर्य्यं, अभ्युदय में क्षमा सदस्मेवाक् पटुता, युध में विक्रम, यश में रुचि, श्रवण में व्यसन, ये महात्माओं के प्रकृति सिद्ध हैं ॥ जिसे संपत् में हर्ष औ विपद् में विषाद नहीं है रण में धीरत्व है ऐसा भुवनत्रये का तिलक जननी विरला सुत जनती है । भूति इच्छा कारक पुरुष को षट् दोष हातव्य हैं यथा निद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य, और दीर्घसूत्रता ॥

अब ऐसा करो संपूर्ण एकचित्त होय जाल ग्रहण करके उड़ो ॥ अल्पबस्तु की भी संहति कार्य्य साधक होती है तृण गुणत्वापन्न होने से मत्त दन्ती का बंधन करते हैं ॥ स्वकुल जन जनित अल्प संहति भी श्रेयसी होती है यथा तुषात्यक्त तन्दुलों का प्ररोहण नहीं होता ॥ ऐसा चिन्तन कर सर्व पक्षी जाल का आदान कर उत्पतित भये ॥ अनन्तर वह व्याघ्र दूर से जालापहारकों को देख चिन्तन करता २ पश्चात् धावित भया और बोला ॥

बिहंगमों नें संहति कर मेरे जाल को हरण किया पर जब निपतित होंगे तब मेरे बश में आवेंगे ॥

तदनन्तर जब वे चक्षुर्विषयातिक्रान्त भये तब वह भी नि-

हृत्त भया। लुब्धक को निहृत्त देख कपोत बोले। इस काल क्या कर्त्तव्य है। चित्रग्रीव ने कहा।

माता मित्र पिता स्वभाव से हित जनक हैं अन्य कार्य्य कारण से हित बुद्धी होते हैं—अस्मदादिक का मित्र हिरण्यक नाम मूषक राज गण्डकी के तीर चित्रवन में निवास करता है सो अस्मदादिक के पाश छेदन करेगा यह आलोचन कर सब हिरण्यक विवर समीप गये। हिरण्यक सर्वदा अपायशंका से शत द्वार विवर कर निवास करता। ततः हिरण्यक कपोतावपात भय से चकित होय तूष्णीं भया। चित्रग्रीव बोला हे सखे हिरण्यक अस्मदादि से संभाषण क्यों नही करते? ततः हिरण्यक तद्वचन का प्रत्यभिज्ञान करके और ससंभ्रम बहिः निःसरण करके कहा। आः मैं पुण्यवान हूं मेरा प्रिय सुहृत् चित्रग्रीव आज प्राप्त भया॥

जिस का मित्र के साथ संभाषण संस्थिति वा संलाप होता है उसके समान पुण्यवान कोई नही है॥

अथ इन्हें पाश बद्ध दृष्टि कर सविस्मय क्षण मात्र स्थित होय बोला। हे सखि यह क्या है। तब चित्रग्रीव नें कहा हे सखे अस्मदादि का प्राक्तन जन्म जनित कर्म्म फल है।

लिखा है॥ यस्मात् येन यथा यदा यत् यावत् यच्च शुभवा

जो कुछ आत्मकर्म्म शुभ अथवा अशुभ हुआ है सो उस हेतु से उस के साथ उस प्रकार उस काल वही उसी वहां विधाटवश से उपेत होता है ॥ यह श्रवण कर मूषक चित्रग्रीव के बन्धन छेदन करने को सत्वर उपसरण करने लगा। तब चित्रग्रीव बोला। हे मित्र ऐसा मत करो। किन्तु प्रथम मेरे आश्रितों के पाश छेदन करो हिरण्यक बोला। मैं अल्पशक्ति हूं और मेरे दन्त कोमल हैं इस निमित्त इन के पाश छेदन करने को कैसे समर्थ हूंगा। सो जब तक मेरे दन्त त्रुटित न होवें तब तक तुम्हारे पाश छेदन करूंगा अनन्तर इन के भी निज शक्त्यनुसार छेदन करूंगा। चित्रग्रीव ने कहा। एवं अस्तु। तथापि यथाशक्ति इन के बन्धन खण्डन करो हिरण्यक ने कहा। भाई आत्मपरित्याग से जो आश्रितों का परिरक्षण है सो नीति वेत्ताओं को सम्मत नहीं है॥ क्योंकि (कहा है कि) आपत् के अर्थ धन का रक्षण करना धन से दारा का रक्षण करना (और) धन और दारा इन दोनों से सतत आत्मा का रक्षण करना। धर्म्म अर्थ काम मोक्ष इन की संस्थिति का हेतु प्राण है इस कारण इस के हनन से किसका हनन नहीं होता और इस के रक्षण से किस का रक्षण नहीं। चित्रग्रीव बोला। यथार्थ कहते हो नीति तो ऐसी ही है किन्तु मैं अपने आश्रितों के दुःख सहन करने को सर्वथा असमर्थ हूं इस निमित्त ऐसा कथन कर्त्ता हूं। इस लिये कि—

प्राण, जीवन और धन, परार्थ उत्सर्जन करते हैं। क्योंकि नियत विनाश में सन्निमित्त त्याग ही वर है ॥ और अपर असाधारण हेतु यह है कि। ये जाति द्रव्य बल में मेरे समान हैं। तो मेरे प्रभुत्व का फल किस काल में क्या होगा सो कहो। बिना वर्त्तन ये मेरे अंतिक को त्याग नहीं करते इस हेतु प्राणव्यय से भी इन मेरे आश्रितों को जिवा। हे मित्र मांस मूत्र पुरीष अस्थि निर्मित और विनश्वर कलेवर के विषय आस्था को त्याग कर मेरे यश का पालन कर ॥ यदि अनित्य मलवाही काय से नित्य निर्मल यश मिले तो क्या अलभ्य है ॥ शरीर और गुणों का अत्यन्त अन्तर है ॥ शरीर क्षण विध्वंसी है और गुण कल्पान्त स्थायी है ॥

यह श्रवण कर हिरण्यक प्रहृष्ट मन और पुलकित होय बोला। साधु मित्र साधु। इस आश्रितवात्सल्यभाव से तुम्हारे विषे त्रैलोक्य के प्रभुत्व की योजना करनी उचित है। ऐसे कथन कर उस ने सभों के बंधन छेदन किये। अनन्तर हिरण्यक सब का सादर पूजन कर बोला। हे सखे चित्रग्रीव जाल बन्धन विधि में दोष की आशंका कर आत्म अवज्ञा सर्वथा नहीं कर्त्तव्य है। क्योंकि खग शत योजन से अधिक आमिष दृष्टि करते हैं वेही काल प्राप्त भये पाशबन्ध की दृष्टि नहीं करते। अपरंच। शशि दिवाकर को ग्रहपीडा, गजभुजंगम को बन्धन, मतिमान् को दरिद्रता, विलोकन करता हूं। इस हेतु मेरी मति में विधि बलवान् है।

और। व्योम के एकान्त में बिहारकरनेहारे बिहंगम आपदा को प्राप्त होते हैं और अगाधसलिल समुद्र से मत्स्यों का बधन होता है। तौ इस विषय में दुर्णीत क्या है और सुचरित क्या है और स्थान लाभ में गुण क्या है काल ही व्यसन रूपी हस्त प्रसारित करके दूर से भी ग्रहण कर्त्ता है॥ ऐसे प्रबोधन करके आतिथ्य और आलिंगन कर संप्रेषित किया और चित्रग्रीव भी सपरिवार यथेष्ट देश को प्राप्त भया और हिरण्यक भी स्वविवर में प्रविष्ट भया ॥

॥ शिक्षा ॥

हम लोगन को उचित है कि अनेक मनुष्यों से मित्रता करें देखो मूषक की मित्रता से कपोत मुक्त बन्धन भये ॥

तब सर्वबृत्तान्तदर्शी लघुपतनक काक ने साश्चर्य यह कहा। अहो हिरण्यक तुम श्लाघ्य हो तुम्हारे साथ मित्रता की इच्छा करता हूं आप मुझे मैत्र्य भाव से अनुग्रह करने को समर्थ हैं। यह श्रवण कर हिरण्यक भी विवर के अभ्यन्तर से बोला तुम कौन हो उस ने कहा मैं लघुपतनक नामा वायस हूं हिरण्यक विहँस कर बोला। तुम्हारे साथ मैत्री कैसी। बुध को चाहिऐ कि लोक में जो जिस के साथ युक्त होता है उस के साथ उस का योजन करे। मैं अन्न और आप भोक्ता तो प्रीति कैसे होगी। भक्ष्य भक्षक की प्रीति विपत्ति का कारण है जैसे पाश-

बहु मृग को शृगाल से काक ने रक्षित किया ।

वायस बोला यह कैसे भया । हिरण्यक कहने लगा । मगध देश में चंपकावती नाम अरण्यानी तिस में चिर काल से महान् स्नेह से मृग काक निवास करते रहे उस हृष्ट पुष्टांग मृग को अपनी इच्छा से भ्रमण करते किसी शृगाल ने अवलोकन किया तिसे देख शृगाल चिन्तन करने लगा । आः यह सुललित मांस कैसे भक्षण करूंगा । भला प्रथम विश्वास उत्पादन करूं । यह आलोचन कर निकट जाय बोला। मित्र कुशल से हो । मृग बोला। तू कौन है । उस ने कहा क्षुद्र बुद्धि नामा जम्बुक हूं । मैं इस अरण्य में बन्धुहीन मृतवत् निवास करता हूं । अब तुम को मित्र आसादन कर पुनः सबन्धु होय जीव लोक में प्रविष्ट भया अब मैं सर्वथा तुम्हारा अनुचर होऊंगा । मृग बोला एवमस्तु । इस के अनन्तर मरीचिमाली भगवान् सविता अस्तगत भये वे दोनों मृग के वासस्थान को गये । तहां सुबुद्धि नामा काक मृग का चिरमित्र चम्पक वृक्ष की शाखा पर निवास करता था । उन दोनों को देख कर बोला । हे सखे यह द्वितीय कौन है । मृग बोला यह जम्बुक है और अस्मदादि से सख्य भाव की इच्छा कर आया है । काक बोला । मित्र अकस्मादागत के साथ मित्रता युक्त नहीं है । ऐसा उक्त है कि ॥

किसी अज्ञात कुलशील को वास न देवे है क्योंकि मार्जार के

दोष से जरद्गव गृध्र का हनन भया। यह सुन उन्हों ने कहा यह कैसी वार्त्ता है। तब काक कहने लगा ॥

भागीरथी तीर पै गृध्रकूट नाम पर्वत पर एक महान् पर्कटी वृक्ष रहा जिसकी कोटर में दैवदुर्व्विपाक से गलित नख नयन जरद्गव नाम गृध्र वास करता और कृपाकर उसके जीवनार्थ उस वृक्षवासी पंछी निज आहार से किंचित् किंचित् उद्धरण कर के देते उसी से उस का जीवन होता। एक दिन दीर्घकर्ण नामा मार्जार पक्षिशावकों के भक्षण करने के निमित्त वहां आया।

तब उसे आया देख भयार्त्त पक्षिशावकों ने कोलाहल किया। यह श्रवण कर जरद्गव बोला। यह कौन आता है। दीर्घकर्ण गृध्र को अवलोकन कर सभय बोला। हाय मैं मारा गया। जब तक भय अनागत है तब तक भय से भेतव्य है और आगत भय वीक्षण कर नर को यथोचित करना उचित है ॥

अब सन्निधान से पलायन करने को अक्षम हूं। जो कुछ भवितव्य है सो होय पर विश्वास उत्पादन कर इस के समीप उपगमन करूं यह आलोचन कर समीप जाय बोला हे आर्य्य तुम्हें अभिवन्दना करता हूं। गृध्र बोला दूर अपसरण कर नहीं तो तू मुझ से मारा जायगा। मार्जार बोला, प्रथम मेरे वचन श्रवण करो जिस के अनन्तर यदि मैं वध्य हूं तो हनन करो। क्योंकि। जाति

माच ही से कोई पूज्य वा वध्य नहीं व्यवहार के परिज्ञान से व-
ध्य वा पूज्य होता है ॥

गृध्र बोला किस लिये आये हो। वह बोला। यहां गंगा तीर पर
मैं नित्यस्नायी निरामिष ब्रह्मचारी चान्द्रायण व्रत आचरण कर नि-
वासकरता हूं तुम धर्म्मज्ञानरत विश्वासभूमि हो यह वार्त्ता सर्व
पक्षी मेरे आगे प्रस्तुत करते हैं आप मुझ से विद्या और वय में
हृद्ध हैं इस निमित्त धर्म्म श्रवण करने को यहां आया हूं। आप
एतादृश धर्म्मज्ञ होय कर भी मुझ अतिथि के हनन करने को
उद्यत भये गृहस्थों का तौ यह धर्म्म है।

यदि अरि गृहागत होय तौ भी आतिथ्य धर्म्म करना उचित है
जैसे द्रुम, छेदन करनेवाले कोभी पार्श्वगत छाया का उपसंहार नहीं
करता ॥ यदि धन नहोय तौ प्रीति युक्त वचन से ही अतिथि पू-
जनीय होता है। क्यूंकि। तृण भूमि उदक चौथा सूनृत
वाक्य ये वस्तु सत्पुरुषों के गेह में कदाचन उच्छिन्न नहीं
होतीं। साधु लोग निर्गुण पर भी दया करते हैं जैसे चंद्र
चांडाल के वेश्ममें निज ज्योत्स्ना का कुछ संहार नहीं करता
है॥ द्विजातियों का गुरु अग्नि वर्णों का गुरु ब्राह्मण स्त्री का गुरु
पति और सभों का गुरु अभ्यागत है।

जिसके गृहसे अतिथि भग्नाश होकर निवृत्त होता है वह

उसे दुष्कृत देकर और उस का पुण्य आदान करके जाता है उत्तम वर्ण के गृह जो नीच का भी आगमन होय तौभी वह यथा योग्य पूजनीय है क्योंकि अतिथि सर्वदेवमय है ।

गृध्र बोला मार्जार को मांस की रुचि अधिक होती है और यहां पक्षिशावक निवास करते हैं इस कारण मैं ऐसा कहता हूं । यह श्रवण कर मार्जार भूमि स्पर्श कर कर्ण स्पर्श करने लगा और कहने लगा मैं ने धर्म्म शास्त्र सुन वीतराग होय यह दुष्करचांद्रायण व्रत का अध्यवसन किया क्योंकि परस्पर विवद-मान जो धर्म्मशास्त्र उनका मत यही है जो अहिंसा परम धर्म्म है ।

जो सर्व हिंसा निवृत्त हैं और सर्वसह हैं और सर्व के आश्रयभूत हैं वे स्वर्गगामी हैं । एक धर्म्म ही सुहृद् है जो निधन होने से भी अ-नु गमन करता है और संपूर्ण शरीर के साथ नाश होते हैं । जब कि कोई किसी का मांस खाता है तब दोनों का अंतर देखो एक की क्षण भर की प्रीति है और दूसरा प्राण से जाता है । (मुझे) मरना है यह दुख जब पुरुष को उत्पन्न होता है तब इस विचार से (उस पुरुष करके) शत्रु भी रक्षित हो सकेगा । स्वच्छन्द वनजात शा-कादि से भी उदर पूर्ण होता है तौ इस दग्धोदरार्थ कौन महा-पातक करे । ऐसे विश्वास उत्पन्न कर वह मार्जार तरु कोटर में स्थित भया । तिस के अनन्तर कुछ दिवस व्यतीत भये पक्षि शावकों का

आक्रमण कर कोटर में लाकर प्रत्यह खाने लगा ।

जिनके अपत्य खादित ऊए थे उन्हों ने शोकार्त्त होय विलाप करते ऊए इतस्ततः जिज्ञासा समारब्ध की। तिसका परिज्ञान कर मार्जार कोटर से निःसरण कर बाहर पलायित भया । पश्चात् पक्षियों ने इतस्ततः निरूपण कर कोटर में शावकों के अस्थि पाये । अनन्तर इसी जरद्गव करके असदादि के शावक खादित भये हैं यह संपूर्ण पक्षियों से निश्चित किया गया और गृध्र व्यापादित भया—इस निमित्त मैं ने अज्ञात कुलादि वाक्य कहे । यह श्रवण कर वह जम्बुक सकोप बोला । मृग के प्रथम दर्शन दिवस आप भी अज्ञात कुलशील थे तो आप को इन के साथ स्नेहाऽनुवृत्ति उत्तरोत्तर कैसे भई ॥

जहां विद्वज्जन नहीं तहां अल्पधी भी श्लाघ्य है जैसे निरस्तपादप देश में एरण्ड भी द्रुमता को प्राप्त होता है । यह निज है और यह पर है यह गणना लघुचेतसों की है, और उदारचरितों की तो वसुधाही कुटुम्बसम है ॥

जैसा यह मृग मेरा बन्धु है वैसे आप भी। मृग ने कहा। इस उत्तर से कौन लाभ है सब एकत्र विश्रंभाऽऽलाप करते सुख पूर्वक निवास करें ।

न कोई किसी का मित्र है न कोई किसी का रिपु परन्तु व्यव
हार से मित्र और रिपु उत्पन्न होते हैं।

तब काक ने कहा ऐसाही है। पीछे प्रातः काल भये यथाभि-
मत देश को गये। एक समय निभृत में शृगाल ने कहा। हे सखे
इसी बन के एक देश में शस्यपूर्ण क्षेत्र है उस क्षेत्र को मैं
तुम्हें लेजाकर दिखाऊंगा। ऐसा करने से मृग प्रत्यह वहां जाकर
शस्य को खाया करता। कई दिन उपरान्त क्षेत्रपतिने क्षेत्र को
देखकर पाश रोपा। इस के अनन्तर पुन रागत मृग पाश से बद्ध
होय चिन्तन करने लगा। अब यहां मित्र से अन्य इस कालपाश-
सम व्याधपाश से छुड़ाने को कौन समर्थ है। अनन्तर जम्बुक
यहां आकर उपस्थित हुआ और चिन्तन करने लगा। कि हमारे
कपट प्रबन्ध से मनोरथ की सिद्धि फलित भई। अब इस काटे-
भये मृग का मांस और असृक् लिप्त अस्थि अवश्य प्राप्त होंगे तिस
से बाहुल्य से भोजन होगा। मृग उसको देख उल्लासित हो
बोला। सखे मेरे बंधन सत्वर छेदन कर मेरी रक्षा करो। लि-
खा है।

आपदामें मित्र, युद्ध में शूर, ऋण में शुचि, क्षीणवित्तमें भा-
र्या, और व्यसन में बान्धव की परीक्षा होती है।

उत्सव, व्यसन, दुर्भिक्ष, राष्ट्रविप्लव, राजद्वार और श्मशान

में जो उपस्थित रहे सो बांधव है।

जम्बुक पाश अवलोकन कर बारंबार चिन्तन करने लगा कि बन्धन तो दृढ हैं। फिर बोला। सखे ये स्नायुनिर्म्मित पाश हैं और आज भट्टारक बार है इस से इन बन्धनों को कैसे स्पर्श करूं। हे मित्र जो चित्त में अन्यथा न मानो तो प्रभात जो कुछ तुम कहोगे सो मैं अवश्य करूंगा। अनन्तर वह काक प्रदोष काल में मृग को अनागत अवलोकन कर फिर इधर उधर अन्वेषण करके और उसे बंधन में देख बोला। सखे यह क्या है? मृग बोला यह अवधीरित सुहृद्वाक्य का फल है। जैसा कहा है।

सुहृद् और हितकामों के भाषित को जो नहीं सुनता है उस की विपत सन्निहित मानिये और उसे शत्रु नंदन जानिये।
दीप निर्वाण की गंध। सुहृद्वाक्य,। और अरुंधती का तारा इन को गताऽऽयुष पुरुष क्रम से न सूंघता है न सुनता है न देखता है॥

काक ने कहा। वह वंचक कहां है। मृग बोला मेरा मांसार्थी यहां ही बैठा है। काक बोला मैं ने तो तुम से पहले ही कहा था।

और। मेरा अपराध कुछ नहीं है यह बात विश्वास करनेमें कारण नहीं क्योंकि दुष्टों से गुणवान को भी भय होता है।
जो परोक्ष में कार्य्यको हानि करे और प्रत्यक्ष प्रियवादी हो

ऐसे मित्र को पयोमुख विषकुंभ की भांति त्याग कीजे फिर काक दीर्घनिःश्वास ले बोला । अरे वंचक पापकर्मी तू ने यह क्या कर्म्म किया। ऐसा कहा है ।

जो इस लोक में मधुर वचन से संलापित, मिथ्या उपचार से वशीकृत आशावान, श्रद्धावान, हैं उन अर्थियोंको कुछ वंचयितव्य नहीं है ।

उपकारी, विश्रब्ध, शुद्धमति, जन से जो पाप का आचरण करता है, ऐसे असत्यसन्ध जन का हे भगवति वसुधा तू कैसे वहन करती है

दुर्ज्जन के साथ सख्य और प्रीति कभी न करनी क्योंकि अंगार उष्ण होय तो हस्त का दहन करे और शीतल होय तो हस्त को कृष्ण करे ।

अथवा दुर्ज्जनों की ऐसी ही स्थिति है ।

पाद के साम्हने गिरता है फिर पृष्ठ मांस खाता है तब कर्ण के पास जाता है और शनैः शनैः कुछ गाता है फिर छिद्र निरूपण कर अशंक हो सहसा प्रवेश करता है इस रीति से खल के संपूर्ण चरित्र मशक धरता है ।

दुर्ज्जन प्रियवादी भी हो तो भी वह विश्वास कारण नहीं है क्योंकि उसके जिह्वाग्र में तो मधु रहता है पर हृदय में

हालाहल विष है ।

पीछे प्रातः काल समय काक ने क्षेत्र पति को लगुड हस्त में लिये उसी ओर आता अवलोकन किया । उस को देख काक बोला । हे सखे मृग तुम आत्मा को मृतवत् दिखा के वायु से उदर को फुला के और पैरों को स्तब्ध कर के रहो मैं तुम्हारे चक्षुओं को चंचु से खोदता हूं पर जब मैं शब्द करूं तब उठकर सत्वर पलाय जाना । मृग काक का वाक्य मान वैसेही हो कर रहा । क्षेत्र पति ने हर्षोत्फुल्ल लोचन से मृग को वैसे ही देखा और कहा । अहो यह तो आप ही मर गया । ऐसे कह कर मृग को बन्धन से मोचन कर सयल पाश ग्रहण करने लगा । तब काक का शब्द सुन मृग शीघ्र उठकर भागा । पीछे इस मृग के निमित्त फेंकी हुई लकड़ी से शृगाल मारा गया । सो कहा है ।

तीन वर्ष तीन मास तीन पक्ष वा तीन दिन में अत्युत्कट पाप और पुण्य का फल यहां ही होता है ।

इसी से मैं ने भक्ष्य भक्षकयोः इत्यादि वाक्य कहे । तब लघुपतनक फिर बोला ।

तुम्हारे भक्षण करने से भी मेरा पुष्कल आहार न होगा और मैं तो अनघ चित्रग्रीव की भांति तुम्हारे जीने से जीवता हूं । सुनो । पुण्यैककर्म्मवालों का पशु पक्षी में भी

विश्वास देखा है (जैसा तुम्हारा चित्रग्रीव का) क्योंकि सत्पुरुषों का स्वभाव साधुशीलत्व से नहीं पलटता। और भी। कदाचित् साधु प्रकोपित भी होय तो भी उस का मनविकार को प्राप्त नहीं होता जैसे तृणोल्का से सागराम्बु तप्त नहीं होता है।

यह सुन हिरण्यक बोला। तुम चपल हो और चपल के साथ स्नेह करना सर्वथा योग्य नहीं है। कहा है।

मार्जार, महिष, मेष, काक, और कापुरुष, ये सब विश्वास करने से सिर पर चढ़ते हैं इस लिये इन का विश्वास करना उचित नहीं है।

और भी एक बात है कि तुम हमारे शत्रुपक्ष में हो। ऐसा कहा है॥

सुश्लिष्ट सन्धि होने से भी शत्रु से मेल न करिये क्योंकि सुतप्त भी पानीय वस्तु पावक को शमन कर देती है। दुर्ज्जन विद्या से अलंकृत भी होय तौ भी त्याग के योग्य है: जैसे मणि भूषित सर्प क्या भयंकर नहीं होता है। जो अशक्य है सो शक्य नहीं होता और शक्य है सो शक्य ही है जैसे उदक में शकट और स्थल में नौका। जो पुरुष महत् अर्थ सार से भी शत्रु में और विरक्त भार्य्या में विश्वास कर-

ता है उसका जीवन उस विश्वास के अन्त पर्य्यन्त ही है अ-
र्थात् वही उस के जीवन का अन्त है ॥

लघुपतनक बोला। तुम नें कहा सो सब मैं ने श्रवण किया।
तथापि मेरा ऐसा संकल्प है जो तुम्हारे साथ सैाहृद्य अवश्य क-
रूंगा। कदाचित् तुम न करोगे तो अनाहार से निज आत्मा
को नष्ट करूंगा। कहा है ॥

दुर्ज्जन मृद्घट के सदृश सुखभेद्य ग्रोर दुःसंधान है
सुजन कनक घट के सदृश दुर्भेद्य ग्रो आशु संधेय है।
द्रवत्व से सब लोहों का, किसी निमित्त से मृग पक्षियों का,
भय ग्रोर लोभ से मूर्खों का ग्रोर दर्शन से सत्पुरुषों का
सङ्ग होता है। सज्जनों का आकार नारिकेल सम दृष्टि
पड़ता है अन्य अर्थात् असज्जन बदरिकाऽऽकार है जो
ऊपर ही से मनोहर पर भीतर से कठोर होते हैं। स्नेह के
छेद होने से भी साधुओं के गुण विकार को प्राप्त नहीं हो-
ते। जैसे मृणालों के भंग होने से भी उन के तन्तु अनुबं-
धन करते हैं। शुचित्व, त्यागिता, शौर्य्य, ग्रोर सुखदुःख
में सामान्यभाव, दाक्षिण्य, अनुरक्ति, ग्रोर सत्यता ये सब
सुहृद् के गुण हैं ॥

इन पूर्वोक्त गुणों से उपेत तुम से अन्य ग्रोर कैान पुमान् है जो

मुझ से प्राप्त होने के योग्य है । इत्यादि वाक्य उसके सुन हिर-
ण्यक बाहिर निकल कर बोला । मैं तुम्हारे वचनाऽमृत से तृप्त
भया । जैसा कहा है ॥

घर्मार्त्त मनुष्य न तो सुशीतल जल के स्नान से, न मुक्ताऽव-
ली से, न प्रत्यंग, अर्पित श्री खण्ड के विलेपन से ऐसा सुखी
होता है जैसा उस का चित्त प्रीतियुक्त सज्जन के भाषित
से सुख पाता है क्योंकि सुकृतियों का सद्युक्त पुरस्कृत भाषण
आकृष्टि मंत्रोपम अर्थात् आकर्षण मंत्र के तुल्य है । और
भी लिखा है । रहस्यभेद, याच्ञा, नैष्ठुर्य्य, चलचित्तता,
क्रोध, निःसत्यता, और द्यूत ये मित्र के दूषण हैं ।

इस वचन क्रम से एक दूषण भी तुम में नहीं लक्षित होता है ।
क्योंकि । पटुत्व, सत्यवादित्व का कथा के योग से बोध हो-
ता है और अलुब्धत्व, अचापल्य ये प्रत्यक्ष ही जाने जाते
हैं ।

और भी । स्वच्छान्तरात्मा का सौहार्द्द और ही रीति का
होता है और शाठ्योपहतचेतों की वाणी और ही प्रकार से
प्रवृत्त होती है । दुरात्माओं का मन और है वचन और
है और कार्य्य और ही होता है । परन्तु महात्माओं का
मन वच और कार्य्य तीनों एकही रहते हैं ।

अब तुम्हारा अभिमत होवे। ऐसे कहकर हिरण्यकनें मित्रता की ग्रीर भोजन विशेष से वायस को संतुष्ट कर अपने विवर में धसा। तब वायस भी स्वस्थान को गया। पीछे वे दोनों अन्योन्य आहार प्रदान कुशलप्रश्न ग्री विस्रब्धालाप करके काल व्यतीत करने लगे। एक समय वायस ने हिरण्यक से कहा। हे सखे मुझे इस स्थान में कष्टसे आहार लभ्य होता है इस कारण इस को छोड़ स्थानान्तर जाने की इच्छा करता हूं। तब हिरण्यक बोला। कहा है।

दन्त केश नख ग्रीर नर ये सब स्थानभ्रष्ट होने से शोभित नहीं होते हैं ऐसा समझ मतिमान पुरुष स्वस्थान का त्याग नहीं करते।

यह सुन काक बोला; मित्र ये किसी कापुरुष का वाक्य है। क्योंकि। सिंह सत्पुरुष ग्रीर गज ये स्वस्थान छोड़ परदेश जाते हैं ग्रीर काक ग्रीर कापुरुष ये एकही स्थान में निधनको प्राप्त होते हैं क्योंकि।

वीर ग्रीर मनस्वी को स्वदेश ग्री विदेश कौनसा है क्योंकि जिस देश में जाते हैं उस देश को अपने बाहु प्रताप से अर्जित करते हैं। जैसे दंष्ट्रा नख लाङ्गूल से प्रहार कारक सिंह जिस बन में जाता है उसी में हतद्विपेन्द्ररुधिर से

अपनी आत्मा की इच्छा को बुझाता है ।

यह सुन हिरण्यक बोला मित्र कहां चलोगे । क्योंकि कहा है ।

बुद्धिमान एक पाद से चलते हैं और एक पाद को स्थित रखते हैं । पर स्थान को देख पूर्व आयतन को छोड़ते हैं ।

वायस ने कहा भाई एक सुनिरूपित स्थान है । तब हिरण्यक ने कहा कौन सा । वायस बोला । दण्डकारण्य में कर्पूर गौराख्य एक सर है तहां चिरकालोपार्जित मेरा प्रिय सुहृद् सहजधार्मिक मन्थराभिधान कूर्म्म रहता है ।

परोपदेश में पाण्डित्य सब नरों को सुकर होता है । और धर्म्म में आप अनुष्ठान करे ऐसा कोई एक महात्मा है । वह मत्स्याहारविशेष से मेरा को बढ़ावेगा तब हिरण्यक भी यह बोला कि मैं यहां अवस्थान करके क्या करूंगा क्योंकि ।

जिस देश में सन्मान, वृत्ति, और बांधव नहीं हैं और न विद्याका आगम है उस देश को छोड़ दीजे । और भी । धनी, श्रोत्रिय, राजा, नदी, और पांचवां वैद्य ये पांच जहां नहीं हैं वहां वास न करिये ।

लोकयात्रा, भय, लज्जा, दाक्षिण्य और त्यागशीलता जहां ये पांच न होयं तहां कभी न ठहरिये ।

हे मित्र वहां भी वास न करना जहां ये चार नहीं हैं

अर्थात् ऋणदाता, वैद्य, श्रोत्रिय और सजलानदी ।

इस से मुझे भी वहां लेचलो । पीछे वायस उस मित्र के साथ विचित्र कथालाप करता हुआ सुख से उस सर के समीप गया। तब मंथर ने दूरही से लघुपतनक को अवलोकन करके यथोचित आतिथ्य कर मूषिक का आतिथ्य और सत्कार करने लगा । कहा है ।

द्विजातियों का गुरु अग्नि है, वर्णों का गुरु ब्राह्मण है, स्त्री का गुरु पति, और अभ्यागत सब का गुरु है ।

वायस बोला हे सखे मंथर इन का पूजन विशेष करके करना क्योंकि ये पुण्यकर्माओं में धुरीण कारुण्यरत्नाकर हिरण्यक नाम मूषिक राज हैं । इन के गुणों की स्तुति कदाचित् सहस्रहृदय जिह्वा से सर्पेश्वर करने को समर्थ होय तो होय ।

इतना कहकर चित्रग्रीव का संपूर्ण उपाख्यान वर्णन किया ।

मंथर ने सादर हिरण्यक का पूजन करके कहा । तुम्हारी आत्मा का भद्र होय अब तुम निर्जनवनाऽवस्थान का कारण कहो । हिरण्यक बोला । आप सुनो मैं कहता हूं । एक चंपकाभिधान नगरी है जहां परिव्राजक निवास करते हैं । तहां चूडाकरण नाम एक परिव्राजक रहता था । सो भोजनावशिष्ट भिक्षान्नसहित भिक्षापात्र को नागदन्तक में रखकर सोता ।

और मैं उस अन्न को उछल २ कर खाता । इस पीछे एक दिन उस का प्रिय सुहृद् वीणाकरण नाम परिव्राजक आया । उस के संग नाना कथा प्रसङ्ग होने लगा पर मेरे त्रासार्थ जर्जरवंशखण्ड से चूड़ाकरण भूमि को ताड़ना करता था । तब वीणाकरण बोला । सखे यह क्या है जो तुम मेरी कथा से विरक्त होकर अन्यासक्त होते हो । कहा है ।

प्रसन्नमुख, विमला दृष्टि, कथा का अनुराग, मधुर वाणी, अधिक स्नेह संभ्रमदर्शन, ये सब सदा अनुरक्तजन के लक्षण हैं । और । अतुष्टिदान, कृतपूर्वनाशन, अमानन, दुश्चरिताऽनुकीर्त्तन और कथाप्रसंग से भी नाम की विस्मृति ये विरक्तभाव जन के लक्षण हैं ॥

तब चूड़ाकरण बोला । भद्र हो । मैं विरक्त नहीं हूं किन्तु देखो यह मेरा अपकारी मूषक सदा मेरे पात्रस्थ भिक्षान्न को खाता है । वीणाकरण ने नागदन्त को देख कर कहा । किस रीति से यह स्वल्प बल मूषिक इतनी दूरतक उछलता है । इस में कुछ कारण है । फिर क्षणमात्र चिन्तन कर बोला । इस में बाहुल्यसे अर्जन करना ही कारण है । क्योंकि ।

लोक में सर्व धनवान्ही सर्वत्र और सर्वदा बलवान् होते हैं देखो राजा में भी धनमूलही प्रभुत्व है ।

पीछे खनित्र आदान कर उस परिव्राजक ने मेरा बिवर खोद चिर-कालोपार्जित धन को ग्रहण किया । तब तो मैं निजशक्तिहीन और उत्साह से रहित हो स्व आहारके उत्पादन करने को अक्षम भया । मुझे ऐसा सहित मन्द मन्द उपसर्पण करते हुए देख कर चूड़ाकर्ण कहने लगा ।

अर्थ से सब कोई बलवान् और पण्डित होते हैं देखो यह पापिष्ठ मूषिक अब स्वजाति समता को प्राप्त भया । अर्थ से परिहीन और अल्पमेधा पुरुषकी संपूर्ण क्रिया नाश होती है जैसे ग्रीष्म ऋतु में कुसरित् ।

जिस के पास अर्थ है उसी के मित्र और बान्धव बहुत होते हैं और लोक में वही पुमान् और वही पण्डित गिना जाता है ।

अपुत्र और सत्मित्र रहित पुरुष का गृह शून्य है, मूर्ख की दिशा शून्य और दरिद्रता सर्व शून्य है ।

दारिद्र्य और मरण में दारिद्र्य को अवर कहा है क्योंकि मरण अल्पक्लेश से होता है परंतु दारिद्र्य अति दुःसह है ।

वही अविकल इन्द्री रहती है वही नाम रहता है वही अप्रतिहत बुद्धि है वही वचन है परन्तु अर्थ की उष्मा से रहित होतेही पुरुष की क्षणमात्र में और ही दशा होजाती है यह विचित्र वार्त्ता है ।

यह सब सुनकर मैंने विचारा कि अब मुझे यहां अवस्थान करना

अयुक्त है और इस समय में औरों से यह वृत्तान्त कहना भी अनुचित है । क्योंकि ।

अर्थ का नाश मन का ताप, और घर के दुश्चरित, वंचन अपमान ये सब मतिमान् प्रकाश नहीं करते हैं । और भी ।

आयु, वित्त, गृहच्छिद्र, मंत्र, मैथुन, भेषज, तप, दान, और अपमान ये नव यत्न से गोप्य हैं ।

दैव के अत्यन्त विमुख होने से और पौरुष के यत्न व्यर्थ होने से दरिद्री मनस्वी को मनसे अन्य और कहां सुख है । मनस्वी पुरुष मरण को प्राप्त होता है पर कार्पण्य को प्राप्त नहीं होता जैसे अनल निर्वाणता को प्राप्त होता है परन्तु शीतता को प्राप्त नहीं होता कुसुमके स्तबक की भांति मनस्वी की दो वृत्ति हैं कै तो सब के मूर्द्ध (शिर) पर रहता है अथवा वनमें विशीर्णता को प्राप्त होता है ।

यहां जो याच्ञा कर जीवना है सो अतीव गर्हित है । क्योंकि ।

विभवहीन को प्राण से संतर्पित अनल वर है पर उपचार से परिभ्रष्ट कृपण जन से प्रार्थना श्रेष्ठ नहीं है ।

और भी । दारिद्र्य से ह्री प्राप्त होती है ह्री परिगत भये सत्त्व से हीन होता है और निःसत्व भये तुच्छ होजाता है । फिर परिभव भये निर्वेद को प्राप्त होता है और निर्वेद से शोक को, शोकनि-

हत होने से निर्बुद्धिता को निर्बुद्धिता से क्षय होता है इस कारण निर्धनता संपूर्ण आपदाओं का आस्पद है । किंच । मैान वर है पर अनृत वचन कहना वर नहीं । क्लीब होना वर है पर परकलच का अभिगमन श्रेष्ठ नहीं । प्राणत्याग होना वर है पर पिशुनके वाक्य में अभिरुचि होना श्रेष्ठ नहीं । भिक्षाशी होना वर है पर परधनाऽऽस्वादनका सुख वर नहीं हैं ॥ शून्य शाला श्रेष्ठ है पर दुष्ट वृषभ उसमें रखना वर नहीं है । वेश्या पत्नी होय तो वर है परंतु अनीता कुलवधू वर नहीं । आरण्य में वास होना वर है पर जिस पुर में अविवेकी अधिप होवे उस पुर में रहना वर नहीं । प्राणत्याग श्रेष्ठ है पर अधम पुरुषों का उपगम श्रेष्ठ नहीं है ॥ और भी । जैसे । अखिल मान को सेवा, तम को ज्योत्स्ना, लावण्य को जरा, और दुरित को हरिहर कथा हरण करती है इसी रीति से अर्थिता शतगुण को भी हरती है । ऐसा विचार यही मन में आया क्यामैं पर पिण्ड से निज आत्मा को भोजन दूंगा । ओ हो यह तो बड़ा कष्ट और केवल कष्ट ही नहीं किन्तु द्वितीय मृत्यु द्वार है । क्योंकि ।

पल्लवग्राहि पाण्डित्य, क्रयक्रीत मैथुन, पराधीन भोजन, ये तीनों पुरुष की विडम्बना है । और भी । रोगी, चिरप्रवासी, परान्नभोजी और परावसथशायी । इन में से जो जीवता है उस का

तो मरण है और जिसका मरण भया है वह उसका विश्राम है। इतनी बातें विचार कर फिरभी लोभ से अर्थ ग्रहण करने के निमित्त गृह बनाया। जैसा कहा है।

लोभ से बुद्धि चलायमान होती है, लोभ से तृषा जनित होती है तृषार्त मानव परलोक और इस लोक में भी दुःख को प्राप्त होता है।

तदनंतर वीणाकर्णने जर्जरवंशखण्ड से मुझ को ताड़ना दी तो मैंने यह चिन्तन किया। यथा।

धनलुब्ध, असन्तुष्ट, अनियतात्मा, वा जितेन्द्रिय होवे पर जिसका मानस तुष्ट नहीं उस को सब आपदा होती हैं। औरभी। जिसका मन सन्तुष्ट है उसको सब सम्पत्ति होती हैं जैसे उपानह से ढकाभया जो पाद है उसको संपूर्ण भू चर्म्मावृत सी है। सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त और शान्त चेतस् मनुष्यों को जो सुख है सो सुख इधर उधर दौड़नेवाले और जो धनलुब्ध हैं उन को कहां। उसीने सब पढ़ा है उसीने सब सुना है और उसीने सब अनुष्ठान किया है जिसने आशा को पीछे कर निराशा का अवलम्ब लिया है। जिसने किसी ईश्वर का द्वार नहीं सेवा वा जिसने विरहव्यथा नहीं दृष्टि की और कभी क्लीब वचन जिसने नहीं कहा ऐसे पुरुष

का जीवन धन्य है (ऐसा कोई होता है) जो तृष्णा से वाह्य मान है उस को शतयोजन भी दूर नहीं और संतुष्ट जन के करप्राप्त भया भी अर्थ आदर नहीं पाता।

इस से अब अवस्था में जो उचित कार्य्य है तिसका परिच्छेद श्रेय है।

धर्म्म क्या है? भूतको दया, सौख्य क्या है? जगत में जन्तुओं की आरोग्यता, स्नेह क्या है, सद्भाव, पण्डित्य क्या है? परिच्छेद करना। जब विपद्दशा प्राप्त होय तब उसका परिच्छेद करना ही पाण्डित्य है क्योंकि अपरिच्छेद कर्त्ता ओंकी पद पद में विपत् होती है। कुल के निमित्त एक को त्यागिये, ग्रामके लिये कुल का त्याग कीजे, जनपद के हेतु ग्राम छोड़ दीजे, और आत्माके निमित्त पृथ्वी को त्याग दीजिये।

निरायास पानीय और भयोत्तर स्वादुअन्न इन दोनों को विचार कर देखता हूं तो जिस में निर्वृति है उसी में सुख है यह विचार कर मैं निर्जन वन को चला आया। क्योंकि।

व्याघ्र और गजेन्द्र से सेवित जो वन है सो श्रेष्ठ है द्रुम का आलय और पक्वफल अम्बु का भोजन वर है तृण शय्या और वल्कल का परिधान करना उत्तम पर बन्धुमध्य में धनहीन जीवन उत्तम नहीं है।

पश्चात् निज पुण्योदय से इस मित्र से स्नेह की अनुवृत्ति करके मैं

अनुग्रह किया गया, और इस काल में पुण्य के उदय से स्वर्ग समान आप का आश्रय प्राप्त भया। क्योंकि ॥

इस संसार रूपी विष वृक्ष के दो मधुर फल हैं एक का अरूप अमृत रस स्वाद, द्वितीय सज्जन के साथ संगम होना। और भी ॥

सज्जन संगम, केशव की भक्ति, और गंगा जल से स्नान ये तीन इस असार संसार में सार हैं ॥

यह सुन मंथर ने कहा ॥

पादरज के सम अर्थ है और यौवन गिरि की नदी के वेग समान है, आयुष्य जल की लोल बिन्दु सम चपल है और फेन तुल्य जीवन ऐसा जानकर जो निश्चल मति स्वर्ग की अर्गल का उद्घाटन करनेवाले धर्म को नहीं करते सो जरा अवस्था में पश्चात्ताप से हत हो शोकाग्नि से दहन होते हैं ॥

आप ने अति संचय किया, उसी का यह दोष भया। सुनो।

उपार्जित वित्त का त्याग करना ही उस का रक्षण है, जैसे तडाग के उदरस्थ अम्भस का परीवाह ही श्रेष्ठ होता है। मितम्पच (सूम) जो पृथ्वी में वित्त गाड़ता है, सो निश्चय करके नीचे जाने के लिये निलय (घर) पहले से बनाता है। जो निज सौख्य का निरंधान कर धन के अर्जन करने की

इच्छा करता है वो परार्थ भार वाही की भांति केवल क्लेश ही का भाजन होता है। ऐसा कहा है॥

दान और उपभोग से हीन जो धन उस से यदि धनी कहावे तो पृथ्वी के खात में निखात जो धन उस से हम सब कोई धनवान् हैं। दान और उपभोग से विहीन जिस के दिवस व्यतीत होते हैं वह कर्म्मकार की भस्त्र (लुहार की धोंकनी) की भांति स्वास लेता है, पर जीवता नहीं है॥

जो अपना धन न किसी को देता है और न उपभोग करता है उस को उस धन से क्या अर्थ, उस बल से क्या अर्थ जो रिपु को बाधा न करे और उस श्रवण से क्या लाभ जब शास्त्राऽनुसार धर्म्म का आचरण न करे और जितेन्द्रिय न होवे तो उस आत्मा से क्या फल? ॥

कृपण के धन में कृपण पुरुष और इतर पुरुषों की असंभोग से समानता है, पर उस धन की हानि होने से जब कृपण दुःख को प्राप्त होता है तब जाना जाता है कि यह दूसी का धन था॥

कृपण का धन न तो देवता के लिये, न बंधु के अर्थ, न आत्मा के निमित्त व्यय होता है पर वन्हि, तस्कर, वा पार्थिव (राजा) से लिया जाता है॥

ऐसा कहा है। प्रिय वाक् सहित दान, अगर्व्व ज्ञान, क्षमा

न्वित शौर्य्य, और त्याग सहित वित्त, यह चतुर्भद्र (चार बार्त्ता) इस संसार में दुर्लभ है, अर्थात् किसी २ में होता है॥

कहा है। संचय नित्य करना पर अति संचय न करना देखो यह संचय शील जम्बुक धनुष् से मारा गया॥

हिरण्यक ने कहा यह कैसी बार्त्ता है सो कहो? तब मंथर कहने लगा। कल्याण, कटक नगर में एक भैरव नाम व्याधी रहे वह मांस लुब्ध होय एक समय धनुष् ले विंध्य के अटवी के मध्य गया, और एक व्यापादित मृग को लेकर चला। चलते २ मार्ग में एक घोराकृति शूकर दृष्टि आया तब उस व्याध ने मृग को भूमि पर धर उस शूकर को शर से मारा शूकर ने घन की भांति घोर गर्जना कर उस के मुष्क देश (अंडकोश) में प्रहार किया तब व्याध छिन्नद्रुम की भांति भूमि पर गिरा॥

कहा है। जल अग्नि विष शस्त्र क्षुधा व्याधि और गिरि से पतनादि कोई निमित्त पाकर देही प्राण को छोड़ता है॥

पीछे उन दोनों के पद के आस्फालन (पैरों का चलाना) से एक सर्प भी मर गया। इस में दीर्घरव नाम जम्बुक निज आहार के लिये परि भ्रमण करता हुआ वहां आया, इन मृतक मृग, व्याध, सर्प, और शूकर, को देखा चिन्तन करने लगा कि मुझे आज बहुत सा भोजन मिला॥

जैसे देही (देहधारी) को अचिन्तित दुःख आता है तैसे

इच्छा करता है सो पदार्थ भार वाहो की भांति केवल क्लेश ही का भाजन होता है। ऐसा कहा है ॥

दान और उपभोग से हीन जो धन उस से यदि धनी कहावे तो पृथ्वी के खात में निखात जो धन उस से हम सब कोई धनवान् हैं। दान और उपभोग से विहीन जिस के दिवस व्यतीत होते हैं वह कर्म्मकार की भस्त्र (लुहार की धोंकनी) की भांति स्वास लेता है, पर जीवता नहीं है ॥

जो अपना धन न किसी को देता है और न उपभोग करता है उस को उस धन से क्या अर्थ, उस बल से क्या अर्थ जो रिपु को बाधा न करे और उस श्रवण से क्या लाभ जब शास्त्राऽनुसार धर्म्म का आचरण न करे और जितेन्द्रिय न होवे तो उस आत्मा से क्या फल? ॥

कृपण के धन में कृपण पुरुष और इतर पुरुषों की असंभोग से समानता है, पर उस धन की हानि होने से जब कृपण दुःख को प्राप्त होता है तब जाना जाता है कि यह इसी का धन था ॥

कृपण का धन न तो देवता के लिये, न बंधु के अर्थ, न आत्मा के निमित्त व्यय होता है पर वन्हि, तस्कर, वा पार्थिव (राजा) से लिया जाता है ॥

ऐसा कहा है। प्रिय वाक् सहित दान, अगर्व्व ज्ञान, क्षमा

न्वित शौर्य्य, और त्याग सहित वित्त, यह चतुर्भद्र (चार वार्त्ता) इस संसार में दुर्लभ हैं, अर्थात् किसी २ में होता है॥

कहा है । संचय नित्य करना पर अति संचय न करना देखो यह संचय शील जम्बुक धनुष् से मारा गया ॥

हिरण्यक ने कहा यह कैसी वार्त्ता है सो कहो ? तब मंथर कहने लगा । कल्याण, कटक नगर में एक भैरव नाम व्याधी रहे वह मांस लुब्ध होय एक समय धनुष् ले विंध्य के अटवी के मध्य गया, और एक व्यापादित मृग को लेकर चला । चलते २ मार्ग में एक घोराकृति शूकर दृष्टि आया तब उस व्याध ने मृग को भूमि पर धर उस शूकर को शर से मारा शूकर ने धन की भांति घोर गर्जना कर उस के मुष्क देश (अंडकोश) में प्रहार किया तब व्याध छिन्नद्रुम की भांति भूमि पर गिरा ॥

कहा है । जल अग्नि विष शस्त्र क्षुधा व्याधि और गिरि से पतनादि कोई निमित्त पाकर देही प्राण को छोड़ता है ॥

पीछे उन दोनों के पद के आस्फालन (पैरों का चलाना) से एक सर्प भी मर गया । इस में दीर्घरव नाम जम्बुक निज आहार के लिये परिभ्रमण करता हुआ वहां आया, इन मृतक मृग, व्याध, सर्प, और शूकर, को देखा चिन्तन करने लगा कि मुझे आज बहुत सा भोजन मिला ॥

जैसे देही (देहधारी) को अचिन्तित दुःख आता है तैसे

जो कुछ भी होता है वह मैं मानता हूं पर तौ भी दैवगति सब से बलवान् है ॥

अब इन के मांस से मेरा भोजन तीन मास से भी कुछ अधिक होगा ॥

एक मास नर मांस से, दो मास मृग, और शूकर के मांस से, एक दिन अहि मांस से, पर आज तो धनुर्गुण (चिल्ला) भक्ष्य है ॥

इस से बुभुक्षा में यह निःस्वाद जो दृढ़ लग्न स्नायु बंधन खाता हूं। यह कहकर उस ने वैसा ही किया। तब छिन्न स्नायु बंधन होकर उत्पतित धनुष् से उस का हृदय भिन्न भया और वह पञ्चतत्व को प्राप्त भया इस कारण कर्त्तव्यः संचयो नित्यं इत्यादि वाक्य मैं ने कहे ॥

जिस धन को देता है और जिस का भोग करता है वही उस का धन है नहीं तो मृतक पुरुष के धन और दारा से अन्य ही लोग क्रीड़ा करते हैं ॥

अब उस अति क्रान्त उप वर्णन करने से क्या लाभ है ॥

कहा है। पंडित बुद्धि नर अप्राप्य वस्तु की वाञ्छा नहीं करते और नष्ट वस्तु का सोच भी नहीं धरते और आपदा में भी मोह को प्राप्त नहीं होते हैं ॥

इस कारण हे सखे तुम को सर्वदा सोत्साह होना उचित है ॥

क्योंकि । शास्त्र पढ़कर भी मूर्ख होते हैं इस से जो क्रियावान् पुरुष है वही विद्वान् है । जैसे सुचिन्तित औषध नाम मात्र से आतुरों को निरोगी नहीं करती ॥

और भी । जो अध्यवसाय (उद्योग) में भीरु है तिस को विज्ञान विधि कुछ गुण नहीं करती जैसे अंध के हस्ततलगत प्रदीप क्या अंध को अर्थ का प्रकाश करेगा ? नहीं ॥ इस से हे मित्र इस दशा विशेष में शान्ति करना योग्य है ॥

आपतित जो सुख वा दुःख तिसे सेवन करना चाहिये क्योंकि दुःख और सुख चक्र के सदृश परिवर्त्तन करते हैं ॥

अन्य । जैसे मण्डूक (मैंडक) निपान (जलाशय) को अंडज (पक्षी) पूर्ण सर की ओर आप ही आप आते हैं, तैसे ही सर्व संपदा विवश होकर उद्योगी पुरुष के पास आती है ॥

अन्य । उत्साह सम्पन्न, अदीर्घ सूत्र, क्रिया विधिज्ञ और व्यसन में असक्त शूर, कृतज्ञ और दृढ़ सौहृद मनुष्यों के निकट लक्ष्मी आप ही आप निवास निमित्त आती है । धीर पुरुष अर्थ के बिना भी बहुमान और उच्चपद को स्पर्श करता है, परन्तु कृपण अर्थ समायुक्त होकर भी परिभव पद को प्राप्त होता है जैसे स्वभाव से उद्भूत और गुण समूह को प्राप्त करने का है विषय जिस का ऐसी जो सिंह की द्युति उस को क्या कनक माला धारण करनेवाला श्वा (कुत्ता) पा सकता है अर्थात्

नहीं पाता॥ मैं धनवान् हूं ऐसा तुझे मद है तो गत विभव में विषाद को क्यों प्राप्त होता है, क्योंकि मनुष्यों का पात और उत्पात कर निहित (ताडित) कंदुक (गेंद) की समान है॥ और भी अभ्र की छाया, खल की प्रीति, नवीन शस्य, योषिता, यौवन, और धन ये सब किंचित् काल के उपभोग हैं अर्थात् थोड़े दिन रहते हैं। वृत्ति के निमित्त अति चेष्टा करना योग्य नहीं है, क्योंकि वह तो बिधाता ही से निर्मित की गई है जैसे गर्भ से उत्पतित जो जन्तु तिस के लिये माता के स्तन प्रस्नवित होते हैं। अन्य॥

जिस ने हंसों को शुक्ल, शुकों को हरित, और मयूरों को चित्रित, बनाया है वही तेरी वृत्ति को भी विधान करेगा॥ हे मित्र और भी सत्पुरुषों का रहस्य सुनो॥

जो उपार्जन करने में दुःख को विपत्ति में ताप को और संपत्ति में मोह उत्पन्न करते हैं ऐसे अर्थ (द्रव्य) सुखावह (सुखदायक) कैसे हैं। जिस को धर्मार्थ वित्त की इच्छा वा चेष्टा है उस से तो निरीहता ही श्रेष्ठ है, क्योंकि पंक के प्रक्षालन करने से उस का स्पर्श न करना ही वर है। अन्यच्च॥

जैसे आमिष आकाश में पक्षियों से, भुवि में श्वापदों से और सलिल में मत्स्यों से भक्षण किया जाता है, तैसी दशा द्रव्यवान् को भी सर्वत्र रहती है। और भी॥

जैसे प्राण भृत को मृत्यु से नित्य भय है; तैसे राज, सलिल अग्नि और स्वजन से अर्थवान् को भी नित्य ही भय रहता है, बहुत क्लेश युक्त जो यह जन्म है तिस में इस से परे और दुःख क्या है? क्योंकि इस में न तो इच्छा की पूर्णता है, न इच्छा की निवृत्ति होती है॥

हे भाई और भी सुनो॥

प्रथम तो धन सुलभ नहीं, और लब्ध भये कृच्छ्रता (कष्ट) से रक्षा होती है और जो कभी लब्ध धन नाश हो गया तो जानो मृत्यु ही भई, इस हेतु इस की चिन्ता कभी न करनी। जब तृष्णा को त्याग किया, तो फिर न कोई धनवान् है न कोई दरिद्री है और जो हम ने तृष्णा को प्रसर (अवकाश) दिया, तो फिर दास्य (दासत्व) सिर पर चढ़ता है॥

और भी। जिस जिस वस्तु की वाञ्छा करता है उस से उस की इच्छा की प्रवृत्ति होती है, अर्थतः वही अर्थ प्राप्त है जिस वाञ्छा की निवृत्ति होती है॥

अब बहुत विश्रंभा लाप से (कथन) क्या लाभ आप मेरे साथ काल व्यतीत कीजिये। क्योंकि॥

महात्माओं का प्रणय (मित्रता) मरण पर्यन्त रहता है और उन का कोप तत्क्षण भंगुर है, और उन का परित्याग निःसंग होता है॥

यह सुन लघुपतनक काक बोला। हे मंथर तुम धन्य हो तुम सर्वदा आश्रय रूप होने के योग्य हो ॥

सन्त ही सत्पुरुषों की आपदा के उद्धार करने को समर्थ है, जैसे पङ्कमग्न गजों के निकालने को गज ही समर्थ होता है, और कोई नहीं होता ऐसा कहते हैं। कि

गुणज्ञ पुरुष गुणी पुरुष से आनन्द पाता है और अगुण शील से गुणी का परितोष नहीं होता है। जैसे अलि (भ्रमर) वन से कमल के निकट आता है, पर एक वास (साथ रहनेवाला) जो भेक सो कभी निकट नहीं जाता है ॥

और भी। इस भू में मानवों के मध्य वही एक श्लाघ्य है, वही उत्तम है, वही सत्पुरुष है, वही धन्य है, (कोन?) जिस के अर्थीवा शरणागत विभिन्न आशा होकर विमुख नहीं जाते हैं ॥

इस रीति से वे स्वेच्छाचार विहारकर संतुष्ट हो सुख से निवास करने लगे। पीछे किसी समय चित्राङ्ग नाम मृग किसी से त्रासित होकर वहां आय मिला। तब पश्चात् आनेवाला जो भय हेतु तिस को संभावना कर मंथर ने जल में प्रवेश किया मूषिक विवर में गया और काक उड्डीयमान हो वृक्षाग्र पर जा बैठा। पीछे लघुपतनक ने दूर तक निरूपण

कर जब कोई भय हेतु न देखा तब फिर सब कोई मिलकर बैठे, और मंथर ने कहा। हे मृग तुम कुशल से हो? अपनी इच्छानुसार उदक और आहार ग्रहण करो, और यहां अवस्थान करके (रहकर), इस बन को सनाथ करो; चित्राङ्ग बोला। मैं लुब्धक से त्रासित होकर तुम्हारी शरण आया हूं। कहा है कि

लोभ से वा भय से जो शरण आवे, और जो उस शरणागत को त्याग करे तो तहां मनीषी (पण्डित) कहते हैं कि उसे ब्रह्महत्या सम पातक होता है॥

इस से तुम्हारे साथ मित्रता की इच्छा रखता हूं। तब हिरण्यक कहने लगा, कि हमारे साथ तुम्हारी मित्रता अयत्न ही से निष्पन्न है। कहा है कि

चार प्रकार के मित्र होते हैं, एक औरस, दूसरा कृत सम्बन्ध, तीसरा वंश क्रमागत, और चौथा व्यसन से जिस की रक्षा की जावे।

इस से अब तुम अपना गृह जानकर यहां ठहरो। यह सुन मृग आनन्द पूर्वक स्वेच्छाहारकर पानी पी, जल के निकट तरु की छाया में जाय बैठा। क्योंकि

कूपोदक, वटच्छाया, श्यामा स्त्री, और इष्टिका (ईंट)

वृक्ष, ये सब शीतकाल में उष्ण और उष्णकाल में
शीतल होते हैं ॥

मंथर बोला, हे सखे मृग तुम किस से त्राहित भये, सो कहो । इस निर्जन बन में क्या कभी २ व्याध संचार करते हैं? । मृग ने कहा । एक कलिंग देश का रुक्माङ्गद नाम नृपति है, वह दिग्विजयक्रम से चन्द्रभागा नदी के तीर पर आकर कटक सहित उतरा है । वह प्रातःकाल इस कर्पूर सर के निकट आवेगा, यह मैं ने व्याधों के मुख से किंवदन्ती (अफुआ) सुना है, इस से यहां भी प्रातःकाल का अवस्थान भय हेतु जानकर जैसा करना हो वैसा कार्य्य करो । यह सुन कूर्म्म भय सहित बोला, मैं तो जलाशयान्तर को जाऊंगा । तब काक मृग ने भी कहा, हां ऐसा ही करो । तब हिरण्यक हंसकर बोला । जब जलाशय प्राप्त होगा तब तो मंथर की कुशल ही है पर स्थल में किस रीति से गमन होगा सो कहो ॥ क्योंकि

जल जन्तु का बल जल में, और दुर्ग निवासियों का
बल दुर्ग में, पदचारी का बल स्वभूमि में, और राजा
को सैन्य (सेना) का बल होता है ॥

सखे लघुपतनक इस उपदेश से वैसा ही होगा
जैसे एक वणिक् पुत्र अपने को बद्ध और निज स्त्री के

स्तन कुटुम्ब को पीड़ित देखकर दुखी भया, तैसे ही तुम भी पीड़ित होगे ।

वे बोले, यह कैसे भया ? तब हिरण्यक कहने लगा । कान्य कुब्ज देश में एक वीर सेन नाम राजा है । उस ने वीरपुर नाम नगर में तुंगबल नाम राज पुत्र को युवराज किया । वह महा धनवान और तरुण था, एक समय स्व-नगर में भ्रमण करते २ अति प्रौढ़यौवना लावण्यवती नाम एक वणिक्पुत्रवधू को देखा । तब स्वहर्म्य में जा स्मर से आकुलित मति होकर उस स्त्री के निमित्त एक दूती भेजी । क्योंकि

तभी तक सत् मार्ग में पुरुष रहते हैं, और तभी तक इन्द्रियों को वश्य भूत रखते हैं तभी तक लज्जा को भी धारण करते हैं, और तभी तक विनय का भी आलंबन धरते हैं, जब तक कि परिणत (झुके हुए) भ्रूचाप से आकृष्ट मुक्त श्रवणपथगत नील पक्ष्म जो लीलावती के दृष्टिबाण वो हृदय में नहीं पतन होते हैं ।

वह लावण्यवती भी उस युवराज के अवलोकन क्षण से स्मरशर के प्रहार से जर्जरितहृदय होय उस में एक चित्त हो गई थी, ऐसा कहा है । असत्य साहस माया मात्सर्य और अति लुब्धता ॥

निर्गुणत्व और अशौचत्व ये स्त्री के स्वभावज दोष हैं ॥

पीछे दूती के वचन सुनकर लावण्यवती बोली । मैं पति व्रता हूं, पर पुरुष का स्पर्श मात्र भी नहीं करती हूं ॥ क्योंकि

भार्य्या वही कहाती है, जो गृह कार्य्य विषें दक्ष होवे प्रजावती होय पतिप्राणा और पतिव्रता होवे । कोकिला का स्वरूप स्वर है, नारी का स्वरूप पतिव्रता है, कुरूपों का रूप विद्या और तपस्वियों का स्वरूप क्षमा है । जिस का भर्त्ता तोषित नहीं होता वह भार्य्या नहीं, क्योंकि अग्नि की साक्षी से मर्य्याद कर्त्ता जो पति वही स्त्री का शरण स्थान है ॥

इस से मेरा प्राणेश्वर जो जो आज्ञा देता है, उसी का मैं आचरण करती हूं दूती ने कहा सत्य है । तब लावण्यवती ने कहा यह तू सत्य ही जान । तब दूती ने वहां से जाकर तुंगबल के आगे सम्पूर्ण निवेदन किया । यह सुन तुंगबल ने कहा । हे स्वामिन् उस को लाकर समर्पण करना उचित है, सो यह किस रीति से हो सकेगा ? तब कुटनी बोली। उपाय करिये । ऐसा कहा है कि

उपाय से जो वस्तु शक्य है, सो पराक्रम से शक्य नहीं है, जैसे एक हस्ती पंक वर्त्म से जाते हुए शृगाल से मारा गया ॥

राज पुत्र ने पूछा यह कैसे भया ? वह दूती बोली ब्रह्मारण्य में कर्पूर तिलक नाम एक हस्ती रहा, उस को देखकर सब शृगालों ने मिल चिन्तन किया। जो यह हस्ती किसी उपाय से मारा जाय, तो इस की देह से हम लोगों का चार मास तक स्वेच्छा भोजन होय। तब एक वृद्ध शृगाल ने यह प्रतिज्ञा की, कि मैं बुद्धि प्रभाव से इस का मरण साधन करूंगा॥

इस के पीछे वह वञ्चक कर्पूर तिलक के समीप जाय साष्टांग प्रणामकर बोला, हे देव दृष्टि प्रसाद करिये। हस्ती बोला, तुम कौन हो? और कहां से आये हो। वह बोला। मैं जम्बुक हूं, और सम्पूर्ण वनवासी पशुओं ने मिलकर मुझे आप के निकट भेजा है, (और कहा है कि) राजा के बिना अवस्थान करना युक्त नहीं है, इस से इस अटवी राज्य में अभिषेक करने के लिये आप को सर्वस्वामि गुणो पेत निरूपित किया है। क्योंकि

कुलाचार जनाचार से शुद्ध प्रतापवान् धार्मिक और नीतिकुशल ऐसा स्वामी भू पर योजना करने के योग्य होता है। और भी देखो। कि पहिले राजा का अनुसन्धान करना पीछे भार्या का, तब धन का, क्यों-

कि इस लोक में राजा के बिना भार्या और धन कहां रह सकता है ।

और भी । पृथ्वीपति भूतों का (प्राणियों का,) पर्जन्य की भांति आधार है । पर्जन्य की विकलता में तो प्राणी जीवते भी हैं, पर भूपति के बिना नहीं जी सकते । बहुधा इसी योग से नियतविषयवर्त्ती पुरुष होता है, क्योंकि साधु पुरुष इस मनुष्य जन्म में बहुत दुर्लभ है । जैसे जड़ विकल व्याधित अधन भी पति तिस को कुल नारी दुख के भय से स्वीकार करती है ॥

अब जिस में लग्नबेला चलायमान न होवे, ऐसा कर आप सत्वर चलिये । ऐसा कह उठकर चला । तब वह हस्ती भी राज्य के लोभ से आकृष्ट होय शृगाल जिस मार्ग से जाता था उसी मार्ग के पीछे २ दौड़ता भया चला, और महा पंक में निमग्न भया, तब हस्ती बोला । सखे शृगाल मैं तो महा पंक में निमग्न भया, अब क्या करना योग्य है ? शृगाल हंसकर बोला । हे देव मेरी पुच्छ के अग्र भाग पकड़ लो । जिस के वचन का तुम ने विश्वास किया उसी का फल है । सो कहा है ।

जब सत्संग से रहित होगे, तब सज्जन गोष्ठी में अवश्य पतित होगे ।

पीछे महापंकनिमग्न हस्ती शृगालों से भक्षण किया गया । इस से मैं कहती हूं कि जो उपाय से होता है, सो बल से नहीं होता । पीछे उस कुटिनी के उपदेश से उस चारुदन्त नाम वणिक् पुत्र को राजपुत्र ने सेवक रक्खा, और सब विश्वास कार्य्य में उस का नियोग किया । एक समय स्नान और अनुलेपन और कनक के अलंकार धारण करके कहा । मुझे एक मास पर्य्यन्त गौरी व्रत कर्त्तव्य है । उस के लिये प्रति रात्र एक कुलवती कन्या वा युवती लाकर समर्पण कर । और वह मुझ से यथोचित्त बिधि से पूजनीय होगी । पश्चात् वह चारुदन्त नित्य प्रति जिस प्रकार से उस ने कहा था उसी रीति से तरुणी लाकर समर्पण करता । फिर आप प्रछन्न होकर निरूपण करता, कि यह क्या करता है ? । उस तुंगवल में देखा कि वह युवती को दूर ही से बस्त्र अलंकार गंध और चन्दन से पूजनकर एक रक्षक देकर भेज देता है । पीछे वणिक् पुत्र इस दृष्टोपजात बिश्वास से और लोभाकृष्ट मन से अपनी स्त्री को लाकर समर्पित किया । वह तुंगवल हृदय प्रिया जो लावण्यवती उस को पहचान ससंभ्रम उठ-

कर निर्दयता से उसे आलिंगन कर आनन्द से उन्मीलित लोचन हो निज पर्य्यंक पर जा उस के साथ विलास किया। इस चरित्र को देख चित्र लिखित सा हो निज कर्त्तव्यता से मूढ जो वणिक् पुत्र सो अत्यंन्त विषाद को प्राप्त भया॥ इसी से मैं ने स्वयं वीक्ष्य इत्यादि वाक्य कहे, वही अवस्था तुम्हारी भी होगी। परन्तु उस के वचन को न मान मंथर बड़े भय से इस जलाशय को छोड़कर चला। तब वे हिरण्यक आदि भी उस के पीछे २ चले। पीछे स्थल में जाते भये किसी व्याध ने बन में फिरते २ उस मंथर को देखा, तो उसे ग्रहण कर उठाय धनुष् में बांध क्षुत्पिपासाकुल हो अपने घर की ओर को चला। तब वे मृग वायस मूषिक् भी अति विषाद को प्राप्त हो उस व्याध के पीछे २ चले। तहां हिरण्यक विलाप करने लगा॥

मैं एक दुःखसागर के पार ऊआ ही, नहीं तब तक द्वितीय दुःख आकर उपस्थित भया सत्य है, छिद्र में बऊत अनर्थ होते हैं॥

स्वभावज मित्र भाग्य से प्राप्त होता है, और वह अकृत्रिम सौहार्द आपत् में भी नहीं छूटता है॥

न माता में, न दारा में, न सौदर्य्य में, न आत्मज में,

पुरुष का तादृश विश्वास होता है, जैसा स्वभावज
मित्र में रहता है ॥

ऐसा बारंबार चिन्तन कर कहा, अहो यह मेरा दुर्भाग्य है ॥ क्योंकि। स्वकर्म्म सन्ताप से विचेष्टित जो कालान्तरावृत्ति शुभ और अशुभ तिन को मैं ने यहां ही जन्मान्तर की भांति दृष्टान्तर में देखे ॥ अथवा।

काया के सन्निहित अपाय है, सपदा के निकट आपद का पद है, समागम अपगम सहित है, और सर्व उत्पादित वस्तु का भङ्गुर (नाश) है । फिर हंसकर बोला ॥

शोक का अराति, भयत्राण, प्रीति और विश्रंभ का भाजन ऐसा जो ये द्वयक्षर रूपी मित्र रत्न है, सो किस ने बनाया है? नयनों को प्रीति रसायन चित्त को आनन्द कारक, और सुख दुःख का पात्र जो मित्र है सो मिलना दुर्लभ है, और और जो सम्वृद्धि समय में द्रव्य के अभिलाष में आकुल हैं, अर्थात् जो द्रव्य ही के अभिलाषी हैं ऐसे मित्र सर्वत्र मिलते हैं, और उन के लिये विपत् जो है, सोई तत्वनिकषग्रावा अर्थात् कसौटी है ॥

इस रीति से बहुत सा विलाप करके, हिरण्यक ने चित्रांग और लघुपतनक से कहा । जब तक यह व्याध बन से बाहिर

निकले तब तक मंथर के छुड़ाने का उपाय करो। तब उन दोनों ने कहा। आप सत्वर कार्य्य कहिये, सो करें। हिरण्यक ने कहा। चित्रांग तुम जल के समीप जाकर, निज आत्मा को मृतवत् दिखाओ, और काक उस शरीर पर बैठकर निज चञ्चु से कुछ लिखे। निश्चय है, कि यह लुब्धक कच्छप को छोड़कर मृग मांस के अर्थ सत्वर जायगा। तब मैं मंथर के बंधन छेदन करूंगा॥ तब चित्रांग और लघुपतनक ने शीघ्र जाकर, जैसे हिरण्यक ने कहा, वैसे ही किया। फिर वह व्याध श्रान्त होय पानी पीकर तरु के नीचे बैठा, और मृग को मृतवत् देखा। तब कर्त्तरिका (कैंची) लेकर, । प्रहृष्ट मन से मृग के निकट चला। इस अन्तर में हिरण्यक ने आकर बंधन छेदन किये। और छिन्न बंधन कच्छप ने सत्वर जलाशय में प्रवेश किया। वह मृग व्याध को निकट आया जान उठकर भागा। प्रत्यावर्तन करके लुब्धक जब तरु के नीचे आया, तब कूर्म को न देख चिन्तन करने लगा। कि मेरे असमीक्षकारी (ईश्वर) ने उचित ही किया। क्योंकि॥

जो ध्रुव को छोड़कर अध्रुव का सेवन करता है, उस की ध्रुव वस्तु नाश होती है, और अध्रुव तो नष्ट होता ही है॥

पीछे यह व्याध स्वकर्म्म वश से निराश होकर, कटक को गया ।

दुर्ब्बल वा बलवान मित्र अवश्य कर्त्तव्य है, क्योंकि देखो
बद्ध जो कूर्म्मपति सो मूषिक से विमोचित भया ॥

मंथरादि संपूर्ण मित्र मुक्तापद होय स्वस्थान को गये, और यथासुख से रहे । यह कथा श्रवण कर, राजपुत्रों ने आनन्द पूर्वक कहा । हम यह कथा श्रवण कर बहुत सुखी भये, और हमारी सिद्धि भई । तब विष्णु शर्म्मा बोला । इस से तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण भई, और । (इस कथा के श्रवण से) इतना फल होवे कि ॥

सज्जनों को मित्र की प्राप्ति होय, जन पद को लक्ष्मी
मिले, और स्वधर्म्मस्थित जो भूपाल सो वसुधा का पा-
लन करें, सुकृतियों की नीति नवोढ़ा स्त्री की भांति
तुम्हारे मन को संतुष्ट करे, और भगवान चंद्रार्द्धचूड़ा
मणि जन का कल्याण करें ॥

यह अनुवाद नंदन नगर की छपी हुई पुस्तक के अनुसार हुआ है, इसी से कलकत्ते की पुस्तक से कहीं २ पाठान्तर और श्लोकान्तर है ॥

इति श्री पण्डित बदरीलाल कृते हितोपदेशाऽनुवादे मित्र लाभो नाम प्रथमकथा समाप्ता ॥ शुभम् ॥